साधो सबद संकलन कीजे

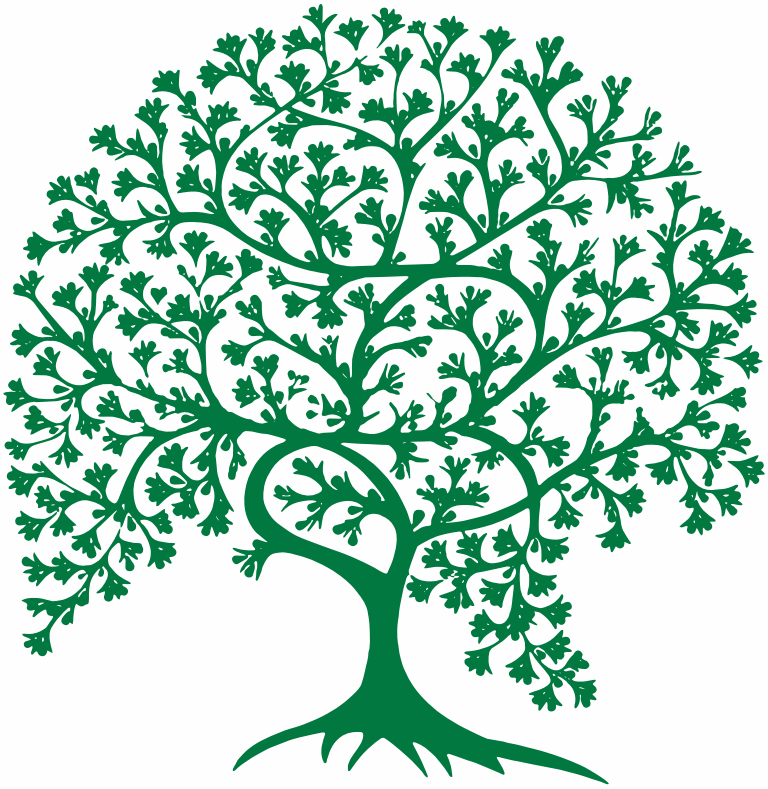

पर्यावरण और जलवायु परिवर्तन से सम्बन्धित
आलेख तथा लोकोक्तियों का संकलन

कुंड
रीते घट भरने की रीत

(अनुपम मिश्र)

'बहता पानी निर्मला' कहावत राजस्थान में ठिठक कर खड़ी हो जाती है। यहां ऐसे अनगिनत कुंड हैं जिनमें पानी बरस भर, और कभी–कभी उससे भी ज्यादा समय तक ठहरा रह कर भी निर्मल बना रहता है। रीते घट भरने की यह रीत बहुत पुरानी है।

जहां वर्षा बहुत ही कम होती है, भूजल भी खूब गहराई पर है और प्रायः खारा है, वहां समाज ने पानी की कमी का रोना नहीं रोया। उसने अपने को इस मामले में खूब अच्छी तरह से संगठित किया और अपने हिस्से में बरसने वाली एक–एक बूंद को संजोकर रखने का तरीका खोज निकाला था। सिद्धांत बिल्कुल सरल हैः वर्षा की बूंदों को यानी पालर पानी को एक खूब साफ सुथरी जगह में रोक कर उनका संग्रह करना। कुंड, कुंडी, टांका – नाम या आकार बदल जाए, काम एक ही है– आज गिरी बूदों को कल के लिए रोक लेना। कुंड सब जगह हैं। पहाड़ पर बने किलों में, मंदिरों में, पहाड़ की तलहटी में, घर के आंगन में, छत में, गांव में, गांव के बाहर निर्जन में, रेत में, खेत में, शहर में – ये सब जगह, सब समय में बनते रहे हैं। तीन सौ, चार सौ बरस पुराने कुंड भी हैं और अभी कल ही बने कुंड भी हैं और अभी कल ही बने कुंड भी मिल जाएंगे। और तो और, स्टार टीवी के एंटिना के ठीक नीचे भी कुंड दिख सकता है। इन कुंडों ने राजस्थान का इतिहास भरा है, वर्तमान में आधुनिक कही गई पेयजल योजनाओं की अक्षमताओं को उजागर किया है और भविष्य में तो ये कुंड राजस्थान की सीमाओं से भी बाहर निकल कर पानी जुटाने की क्षमता रखते हैं।

जहां जितनी भी जगह मिल सके, वहां गारे–चूने से लीपकर एक ऐसा 'आंगन' बना लिया जाता है, जो थोड़ी ढाल लिए रहता है। यह ढाल एक तरफ से दूसरी तरफ भी हो सकती है और यदि 'आंगन' काफी बड़ा है तो ढाल उसके सब कोनों से बीच केन्द्र की तरफ भी आ सकती है। 'आंगन' के आकार के हिसाब से, उस पर बरसने वाली वर्षा के हिसाब से इस केन्द्र में एक कुंड बनाया जाता है। कुंड के भीतर की चिनाई इस ढ़ंग से की जाती है कि उसमें एकत्र होने वाले पानी की एक बूंद भी रिसे नहीं, वर्ष भर पानी सुरक्षित और साफ–सुथरा बना रहे।

कड़े नियम, उदार व्यवस्था

जिस आंगन से कुंड के लिए वर्षा का पानी जमा किया जाता है, वह आगोर कहलाता है। आगोर संज्ञा आगोरना क्रिया से बनी है, बटोर लेने के अर्थ में। आगोर को खूब साफ–सुथरा रखा जाता है, वर्ष भर। वर्षा से पहले तो इसकी बहुत बारीकी से सफाई होती है। जूते, चप्पल आगोर में नहीं जा सकते। समाज ने कड़े नियम बनाए थे, पानी को सरल ढंग से साफ रखने के लिए।

आगोर की ढाल से बहकर आने वाली पानी कुंड के मंडल, यानी घेरे में चारों तरफ बने ओयरों यानी सुराखों से भीतर पहुंचता है। ये छेद कहीं–कहीं इंडु भी कहलाते हैं। आगोर की सफाई के बाद भी पानी के साथ आ सकने वाली रेत, पत्तियां रोकने के लिए ओयरो में कचरा छानने के लिए जालियां भी लगती हैं। बड़े आकार के कुंड़ों में वर्ष भर पानी को ताजा बनाए रखने के लिए हवा और उजाले का प्रबन्ध गोख (गवाक्ष) यानी झरोखों से किया जाता है।

कुंड छोटा हो या कितना भी बड़ा, इसे अछायो यानी खुला नहीं छोड़ा जाता। अछायो कुंड अशोभनीय माना जाता है और पानी के काम में शोभा तो होनी ही चाहिए। शोभा और शुचिता, साफ सफाई यहां साथ–साथ मिलती है।

कुंड का मुंह अक्सर गोलाकर बनता है इसलिए इसे ढंक कर रखने के लिए गुंबद बनाया जाता है। मंदिर, मस्जिद की तरह उठा यह गुंबद कुंड को भव्य भी बनाता है। यहां पत्थर की लंबी पट्टियां मिलती हैं वहां इन्हें गुंबद के बदले पट्टियों से भी ढंका जाता है। गुंबद हो या पत्थर की पट्अी, उसके एक कोने में लोहे या लकड़ी का एक ढक्कन और लगता है। इसे खोल कर पानी निकाला जाता है।

छोटे भी, बड़े भी

कई कुंडियां या कुंड इतने गहरे होते हैं, तीस–चालीस हाथ गहरे कि उनमें से पानी किसी गहरे कुंए की तरह ही निकाला जाता है। तब कुंड की जगत भी बनती है, उस पर चढ़ने के लिए पांच–सात सीढ़ियां भी और फिर ढक्कन के ऊपर गड़बड़ी, चखरी भी लगती है। चुरू के कई हिस्सों में कुंड बहुत बड़े और गहरे हैं। गहराई के कारण इन पर मजबूत चखरी लगाई जाती है और इतनी गहराई से पानी खींच कर ला रही वजनी बाल्टी को सह सकने के लिए चखरी को दो सुन्दर मीनारों पर टिकाया जाता है। कहीं–कहीं चारमीनार–कुंड भी बनते हैं।

जगह की कमी हो तो कुंड बहुत छोटा भी बनता है। तब उसका आगोर ऊंचा उठा लिया जाता है। संकरी जगह का अर्थ ही है कि आस–पास की जगह समाज या परिवार के किसी और काम में लगी है इसलिए कुंड में एकत्र होने वाले पानी की शुद्धता के लिए आगोर ठीक किसी चबूतरे की तरह ऊंचा उठा रहता है।

बहुत बड़ी जोतों के कारण मरूभूमि में गांव और खेतों की दूर और भी बढ़ जाती है। खेत पर दिन–भर काम करने के लिए पानी चाहिए। खेतों में भी थोड़ी–थोड़ी दूर पर छोटी–बड़ी कुंड़ियां बनाई जाती हैं।

कुंड बनते ही ऐसे रेतीले इलाकों में है, जहां भूजल सौ–दो सौ हाथ से भी गहरा और प्रायः खारा मिलता है। बड़े कुंड भी बीस–तीस हाथ गहरे बनते हैं और वह भी रेत में। भीतर बूंद–बूंद भी रिसने लगे तो भरा–भराया कुंड खाली होने में देर नहीं लगे।

इसलिए कुंड के भीतरी भाग में सर्वोत्तम चिनाई की जाती है। आकार छोटा हो या बड़ा, चिनाई तो सौ टका की होती है। चिनाई में पत्थर की पट्टियां भी लगाई जाती हैं। सांस यानी पत्थरों के बीच जोड़ते समय रह गई जगह में फिर से महीन चूने का लेप किया जाता है। मरूभूमि में तीस हाथ पानी भरा हो, पर तीस बूंद भी रिसन नहीं होगी–ऐसा वचन हमारे शहरों के बड़े से बड़े वास्तुकार न दे पाएं, चेलवांजी, कुंड बनाने वाले गजधर तो देते ही हैं।

एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी

आगोर की सफाई और भारी सावधानी के बाद भी कुछ रेत कुंड में पानी के साथ चली जाती है। इसलिए कभी–कभी वर्ष के आरम्भ में, चित्र में कुंड के भीतर उतर कर इसकी सफाई भी करनी पड़ती है। नीचे उतरने के लिए चिनाई के समय ही दीवार की गोलाई में एक–एक हाथ के अंतर पर जरा सी बाहर निकली पत्थर की एक–एक छोटी–छोटी पट्टी बिठा दी जाती है। नीचे कुंड के तल पर जमा रेत आसानी से समेट कर निकाली जा सके, इसका भी पूरा ध्यान रखा जाता है। तल एक बड़े कढ़ाव जैसा ढालदार बनाया जाता है। इसे खमाड़ियों या कुंडालियो भी कहते हैं। लेकिन ऊपर आगोर में इतनी अधिक सावधानी रखी जाती है कि खमाड़ियों में से रेत निकालने का काम दस से बीस बरस में एकाध बार ही करना पड़ता है। एक पूरी पीढ़ी कुंड को इतने समार, यानी सभांल कर रखती है कि दूसरी पीढ़ी को ही उसमें सीढ़ियों से उतरने का मौका मिल जाता है।

पिछले दौर में सरकारों ने कहीं–कहीं पानी का नया प्रबन्ध किया है। पेयजल की नई योजनाएं आई हैं। हैंडपंप या ट्यूबवैल लगे हैं। वहीं इंदिरा गांधी नहर से भी शहरों, गांवों को पीने का पानी दिया जाने लगा है। ऐसे इलाकों में कुंड, टांकों की रखवाली की, देख–रेख की मजबूत परंपरा जरूर कमजोर हुई है। यहां के कुंड टूट–फूट चले हैं, आगोर में झाड़ियां उग आई हैं। लेकिन कही–कहीं पानी की नई व्यवस्था भी लड़खड़ा गई है और तब ऐसी जगहों पर लोंगों ने टूटे कुंडों की फिर से मरम्मत की है। राजस्थान में ऐसे भी क्षेत्र हैं जहां समाज ने पानी के नए साधन आने पर भी अपने पुराने तरीके कायम रखे हैं।

निजी और सार्वजनिक

कुंड निजी भी हैं और सार्वजनिक भी। निजी कुंड घरों के सामने आंगन में, होते यानी अहाते में और पिछवाड़े बाड़ों में बनते हैं। सार्वजनिक कुंड पंचायती भूमि में या प्रायः दो गांव के बीच बनाए जाते हैं। बड़े कुंडों की चारदीवारी में प्रवेश के लिए दरवाजा होता है। इसके सामने प्रायः दो खुले हौज रहते हैं। एक छोटा, एक बड़ा। इनकी ऊंचाई भी कम ज्यादा रखी जाती है। ये खेल, थाला, हवाड़ों, अवाड़ो या उबारा कहलाते हैं। इनमें आसपास से गुजरने वाले भेड़–बकरियों, ऊंट और गायों के लिए पानी भर कर रखा जाता है।

सार्वजनिक कुंड भी लोग ही बनाते हैं। पानी का काम पुण्य का काम है। किसी भी घर में कोई अच्छा प्रसंग आने पर गृहस्थ सार्वजनिक कुंड बनाने का संकल्प लेते हैं और फिर इसे पूरा करने में गांव के दूसरे घर भी अपना श्रम देते हैं। कुछ सम्पन्न परिवार सार्वजनिक कुंड बना कर उसकी रखवाली का काम एक परिवार को सौंप देते थे। कुंड के बड़े अहाते में आगोर के बाहर इस परिवार के रहने का प्रबन्ध कर दिया जाता था। यह व्यवस्था दोनों तरफ से पीढ़ी–दर–पीढ़ी चलती थी। कुंड बनाने वाले परिवार के मुखिया अपनी संपत्ति का एक निश्चित भाग कुंड की सारसंभाल के लिए अलग रख देते थे। बाद की पीढ़ियां भी इसे निभाती थी। आज भी राजस्थान में ऐसे बहुत से कुंड हैं, जिनको बनाने वाले परिवार नौकरी, व्यापार के कारण यहां से निकल कर उसम, बंगाल, मुंबई जा बसे हैं पर रखवाली करने वाले परिवार अभी भी कुंड पर ही बसे हैं। ऐसे बड़े कुंड आज भी वर्षा क`जल का संग्रह करते हैं और पूरे बरस भर आसपास की आबादी को किसी भी नगरपालिका से ज्यादा शुद्ध पानी देते हैं।

नई योजना, कुंड पुराने

कई कुंड टूट–फूट भी गए हैं, कही–कहीं पानी भी खराब हुआ है पर यह सब समाज की टूट–फूट के अनुपात में ही मिलेगा। इसमें इस पद्धिति का कोई दोष नहीं है। यह पद्धति तो नई खर्चीली और अव्यावहारिक योजनाओं के दोष भी ढकने की उदारता रखती है। इन इलाकों में पिछले दिनों जल संकट 'हल' करने के लिए जितने भी नलकूप और 'हैंडपंप' लगे, उसमें पानी खारा ही निकला। पीने लायक मीठा पानी इन कुंड, कुंड़ियों में ही उपलब्ध था। इसलिए बाद में अकल आने पर कहीं–कहीं कुंडों के ऊपर ही 'हैंडपंप' लगा दिए गए हैं। चुरू क्षेत्र में ऐसे कई कुंड मिल जाएंगे जो नई और पुरानी रीत एक साथ निभाते हैं बहुप्रचारित इंदिरा गांधी नहर से ऐसे कुछ ही क्षेत्रों में पीने का पानी पहुंचाया गया है और इस पानी का संग्रह कहीं तो नई बनी सरकारी टंकियों में किया गया है और कही–कहीं इन्हीं पुराने कुंडों में।

इन कुंडों ने पुराना समय भी देखा है, नया भी। इस हिसाब से वे समय सिद्ध हैं। स्वयंसिद्ध इनकी एक और विशेषता है। इन्हें बनाने के लिए किसी भी तरह की सामग्री कहीं और से नहीं लानी पड़ती। मरूभूमि में पानी का काम करने वाले विशाल संगठन का एक बड़ा गुण है– अपनी ही जगह उपलब्ध चीजों से अपना मजबूत ढांचा खड़ा करना। किसी जगह कोई एक सामग्री मिलती है, पर कहीं और पर वह है नहीं– लेकिन कुंड वहां भी मिलेंगे।

जहां पत्थर की पट्टियां निकलती हैं, वहां कुंड का मुख्य भाग उसी से बनता है। कुछ जगह यह नहीं है। पर वहां फोग नाम का पेड़ खड़ा है साथ देने। फोग की टहनियों को एक दूसरे में गूंथ कर, फंसा कर कुंड के ऊपर का गुंबदनुमा ढांचा बनाया जाता है। इस पर रेते, मिट्टी और चूने का मोटा लेप लगाया जाता है। गुंबद के ऊपर चढ़ने के लिए भीतर गुथी लकड़ियों का कुछ भाग बाहर निकाल कर रखा जाता है। बीच में पानी निकालने की जगह। यहां भी वर्षा का पानी कुंड के मंडल में बने ओयरों, छेद से जाता है। पत्थर वाले कुंड में ओयरों की संख्या एक से अधिक लेकिन फोग की कुंडियों में सिर्फ एक ही रखी जाती है। कुंड का व्यास कोई सात–आठ हाथ, ऊंचाई कोई चार हाथ और पानी जाने वाले छेद प्रायः एक बित्ता बड़े होते हैं। वर्षा का पानी भीतर कुंड में जमा करने के बाद बाकी दिनों इसे कपड़े या टाट आदि को लपेट कर बनाए गए एक डाट से ढक कर रखते हैं। फोग वाले कुंड थोड़े छोटे होते हैं इसलिए प्रायः कुंडी कहलाते हैं। कुंडियां अलग–अलग आगोर के बदले एक ही बड़े आगोर में बनती हैं, कुंईयों की तरह। आगोर के साथ ही साफ लिपे–पुते सुन्दर घर और वैसी ही लिपी कुंडियां चारों तरफ फैली विशाल मरूभूमि में लुका छिपी का खेल खेलती लगती हैं।

रेत में रमी कुंडियां

राजस्थान में रंगों के प्रति एक विशेष आकर्षण है। लहंगे, ओढ़नी और चटकीले रंगों की पगड़ियां जीवन के सुख और दुख में रंग बदलती हैं। पर इन कुंडियों को केवल एक ही रंग मिलता है– बस सफेद। तेज धूप और गरमी के इस इलाके में यदि कुंडियों पर कोई गहरा रंग हो तो वह बाहर की गरमी सोख कर भीतर के पानी पर भी अपना असर छोड़ेगा। इसलिए इतना रंगीन समाज कुंडियों को सिर्फ सफेद रंग में रंगता है। सफेद परत तेज धूप की किरणों को वापस लौटा देती है। फोग की टहनियों से बना गुंबद भी इस तेज धूप में गरम नहीं होता। उसमें चटक कर दरारें नहीं पड़ती और भीतर का पानी इन सब बातों के साथ–साथ रेत में रमा रहने के कारण ठंडा बना रहता है।

पिछले दौरे में किसी एक विभाग ने एक नई योजना के अंतर्गत उस इलाके में फोग से बनने वाली कुंडियों पर कुछ प्रयोग किए थे। फोग के बदले नई आधुनिक सामग्री–सीमेंट–का उपयोग किया। प्रयोग करने वालों को लगा होगा कि यह आधुनिक कुंडी ज्यादा मजबूत होगी। पर ऐसा नहीं हुआ। सीमेंट से बनी नई आदर्श कुंडियों का ऊपरी गुंबद इतनी तेज गरमी सह नहीं सका, वह नीचे गहरे गड्ढे में गिर गया। नई कुंडी में भीतरी की चिनाई भी रेत और चूने के बदले सीमेंट से की गई थी। उसमें भी अनगिनत दरारें पड़ गई। कीमती पानी रिसने लगा। तब दरारों को ठीक करने के लिए उसमें डामर भरा गया। 'मरूभट्टी' में डामर भी पिघल गया। वर्षा में जमा किया सारा पानी रिस गया। इलाका नये जल संकट में फंस गया। तब लोगों ने यहां फिर से फोग, रेत और चूने से बनने वाली समयसिद्ध कुंडी को अपनाया और आधुनिक सामग्री के कारण उत्पन्न जल संकट को दूर किया।

खड़िया की कुंडी

मरूभूमि में जहां कहीं भी खड़िया पट्टी मिलती है, लोग उस क्षेत्र में वर्षा के जल को रोकने के लिए कुंई नामक एक और सुन्दर रचना रचते रहे हैं। कुंई अपने आप में एक पूरा शास्त्र है। पर अभी तो कुंड पर वापस लौटें। मरूभूमि में कहीं–कहीं यह खड़िया पट्टी बहुत नीचे ने होकर काफी ऊपर आ जाती है। चार–पांच हाथ। तब कुंई बनाना संभव नहीं होता। कुंई तो पालर पानी के बदले रेजाणी पानी पर चलती है। पट्टी की गइराई कम होगी तो उस क्षेत्र में रेजाणी पानी इतनी मात्रा में जमा नहीं हो पाएगा कि वर्ष भर कुंई घड़ा भरती रह सके। इसलिए ऐसे क्षेत्रों में इसी खड़िया का उपयोग कुंडी बनाने के लिए किया जाता है। खड़िया के बड़े–बड़े टुकड़े खदान से निकाल कर लकड़ी की आग में पका लिए जाते हैं। एक निश्चित तापमान पर ये बड़े डले यानी टुकड़े टूट–फूट कर

छोटे–छोटे नरम टुकड़ों में बदल जाते हैं। फिर इन्हें कूटते हैं। आगार का ठीक चुनाव कर कुंडी की खुदाई की जाती है। भीतर की चिनाई और ऊपर का गुंबद भी इसी खड़िया चूरे से बनाया जाता है। पांच–छः के व्यास वाला यह गुंबद कोई एक बित्ता मोटा रखा जाता है। इस पर दो महिलाएं भी खड़े होकर पानी निकालें तो यह टूटता नहीं।

मरूभूमि में कई जगह चट्टानें हैं। इनसे पत्थर की पट्टियां निकलती हैं। इन पट्टियों की मदद से बड़े–बड़े कुंड तैयार होते हैं। ये पट्टियां प्रायः दो हाथ चौड़ी और चौदह हाथ लंबी रहती हैं। जितना बड़ा आगोर हो, जितना अधिक पानी एकत्र हो सकता हो, उतना ही बड़ा कुंड इन पट्टियों से ढक कर बनाया जाता हैं।

घर छोटे हों, बड़े हों, कच्चे हों या पक्के–कुंडी तो उनमें पक्की तौर बनती ही है। मरूभूमि में गांव दूर–दूर बसे हैं। आबादी भी कम है। ऐसे छितरे हुए गांवों को पानी की किसी केन्द्रीय व्यवस्था से जोड़ने का काम संभव ही नहीं है। इसलिए समाज ने यहां पानी का सारा काम बिल्कुल विकेंद्रित रखा, उसकी जिम्मेदारी को आपस में बूंर–बूंद बांट लिया। यह काम एक नीरस तकनीक, यांत्रिकी न रह कर एक संस्कार में बदल गया। ये कुंडियों कितनी सुन्दर हो सकती हैं, इसका परिचय दे सकते हैं जैसलमेर की सीमा पर बसे गांव।

रांगोली रंगे कुंड

दूर–दूर छितरे गांव। हर गांव में कोई पंद्रह–बीस घर ही हैं। आबादी के घनत्व के लिहाज से भी यह देश का सबसे कम जनसंख्या वाला क्षेत्र है। लोग तो कम हैं ही, पानी भी यहों बहुत ही कम है। जैसलमेर की औसत वर्षा से भी कम वर्षा का क्षेत्र है रामगढ़। यहां हर घर के आगे एक बड़ा सा चबूतरा बना मिलता है। चबूतरे के ऊपर और नीचे दीवारों पर रामरज, पीली मिट्टी और गेरू से बनी सुन्दर अलपनाएं–मानो रंगीन गलीचा बिछा हो। इन चबूतरों पर घर का सारा काम होता है। अनाज सुखाया जाता है, बच्चे खेलते हैं, शाम को इन्हीं पर बड़ों की चौपाल बैठती है। और यदि कोई अतिथि आ जाए तो रात को उसका डेरा भी इन्हीं चबूतरों पर जमता है।

पर ये सुन्दर चबूतरे क`वल चबूतरे नहीं हैं। ये कुंड हैं। घर की छोटी–सी छत, आंगन या सामने मैदान में बरसने वाला पानी इनमें जमा होता है। किसी बरस पानी कम गिरे और ये कुंड पूरे भर नहीं पाएं तो फिर पास–दूर के किसी कुंए या तालाब से ऊंटगाड़ी के माध्यम से पानी लाकर इनमें भर लिया जाता है।

कुंड–कुंडी जैसे ही होते हैं टांके। इनमें आंगन के बदले प्रायः घरों की छतों से वर्षा का पानी एकत्र किया जाता है। जिस घर की जितनी बड़ी छत, उसी अनुपात मे उसका उतना ही बड़ा टांका। घरों के छोटे–बड़े होने का संबंध उनमें रहने वाले परिवारों के छोट–बड़े होने से भी है और उनकी पानी की आवश्यकता से भी। मरूभूमि के सभी गांव, शहरों के घर इसी ढंग से बनते रहे हैं कि उनकी छतों पर बरसने वाला पानी नीचे बने टांकों में आ सके। हरेक छत बहुत ही हल्की–सी ढाल लिए रहती है। ढाल के मुंह की तरफ एक साफ–सुथरी नाली बनाई जाती है। नाली के सामने ही पानी के साथ आ सकने वाले कचरे को रोकने का प्रबन्ध किया जाता है। इसी से पानी छन कर नीचे टांके में जमा होता है। 10–12 सदस्यों के परिवार का टांका प्रायः पंद्रह–बीस हाथ गहरा और इतना ही लंबा–चौड़ा रखा जाता है।

घर में टांके

टांका किसी कमरे, बैठक या आंगन के नीचे रहता है। यह भी पक्की तरह से ढका रहता है। किसी कोने में लकड़ी के एक साफ–सुथरे ढक्कन से ढक देते हैं जिसे खोल कर बाल्टी से पानी निकाला जाता है। टांके का पानी वर्ष भर पीने और रसोई के काम में लिया जाता है। पानी की शुद्धता बनाए रखने के लिए ऐसी छतों को भी आगोर की तरह साफ रखा जाता हैं इन छतों पर भी चप्पल जूते पहन कर नहीं जाते। गरमी की रातों में इन छतों पर परिवार सोता जरूर हे पर अबोध बच्चों को छतों के किसी ऐसे हिस्से पर सुलाया जाता है, जो टांके से जुड़ा नहीं रहता। अबोध बच्चे रात को बिस्तरा गीला कर सकते हैं और इससे छत खराब हो सकती है और तब उस छत का पानी नीचे टांके को भी बर्बाद कर देगा।

नलों को लजाते कुंड

पहली सावधानी तो यही रखी जाती है कि छत, नालियां, और उससे जुड़ा टांका पूरी तरह साफ रहे। पर फिर भी कुछ वर्षों के अन्तर पर गरमी के दिनों में, यानी बरसात से ठीक पहले जब वर्ष भर का पानी कम हो चुका हो, टांकों की सफाई, धुलाई भीतर से भी की जाती है। भीतर उतरने के लिए छोटी–छोटी सीढ़ियां और तेल पर वही खमाड़ियो बनाया जाता है ताकि साद को आसानी से हटा सकें। कहीं–कहीं को बड़ी छतों के साथ–साथ घर के बड़ आंगन से भी जोड़ लेते हैं। तब जल संग्रह की इनकी क्षमता दुगुनी–तिगुनी हो जाती है। ऐसे विशाल टांके भले ही किसी एक बड़े घर के होते हों, उपयोग की दृष्टि से तो उन पर पूरा मोहल्ला जमा हो जाता है। राजस्थान के कस्बों, शहरों में आज भी

ऐसे बड़े टांके मौजूद हैं जो वहां की नगरपालिकाओं के नलों को लजा सकते हैं। नलों का पानी टूट जाए, बंद हो जाए पर इन टांकों को पानी एक मानसून को दूसरे मानसून से जोड़ता रहता है।

मोहल्ले, गांव, कस्बों से दूर निर्जन क्षेत्रों में भी टांके बनते हैं। बनाने वाले इन्हें अपने लिए नहीं, अपने समाज के लिए बनाते हैं। 'स्वामित्व विसर्जन' का इससे अच्छा उदाहरण शायद ही मिल कोई। ये टांके पशुपालकों, ग्वालों के काम आते हैं। सुबह कंधे पर भरी कुपड़ी (मिट्टी की चपटी सुराही) टांग कर चले ग्वाले, चरवाहे दोपहर तक भी नहीं पहुंच पाते कि कुपड़ी खाली हो जाती है। लेकिन आसपास ही मिल जाता है कोई टांका। हरेक टांके पर रस्सी बंधी काठोड़ी, बाल्टी या नही तो टीन का डब्बा तो रखा ही रहता है।

रेतीले भागों में जहां कहीं भी थोड़ी सी पथरीली या मगरा यानी मुरम वाली जमीन मिलती है, वहां टांका बना दिया जाता है। यहां जोर पानी की मात्रा पर नहीं, उसके संग्रहण पर रहता है। 'चुरो' के पानी को भी रोक कर टांके भर लिए जाते हैं। चुरो यानी रेतीले टीले के बीच फंसी ऐसी छोटी जगह जहां ज्यादा पानी नहीं बह सकता। पर ऐसा कम बहाव भी टांके को भरने के लिए रोक लिया जाता है। ऐसे टांकों में आसपास थोड़ी 'आड़' बना कर भी पानी की आवक बढ़ा ली जाती है।

नए हिसाब से देखें तो छोटी से छोटी कुंडी, टांके में कोई दस हजार लीटर और मंझौले कुंडों में पचास हजार लीटर पानी जमा किया जाता है। बड़े कुंड और टांके तो बस लखटकिया ही होते हैं। लाख दो लाख लीटर पानी इनमें समाए रहता है।

करोड़पति टांका

लेकिन सबसे बड़ा टांका तो करोड़पति ही समझिए। इसमें साठ लाख गैलन यानी लगभग तीन करोड़ लीटर पानी समाता है। यह आज से कोई 350 बरस पहले जयपुर के पास जयगढ़ किले में बनाया गया था। कोई 150 हाथ लंबा–चौड़ा यह विशाल टांका चालीस हाथ गहरा है। इसकी विशाल छत भीतर पानी में डूबे पैंसठ खंभों पर टिकाई गई है। चारों तरफ गोख, यानी गवाक्ष बने हैं, ताजी हवा और उजाले को भीतर पहुंचाने के लिए। इनसे पानी वर्ष भर निर्दोष बना रहता है। टांके के दो कोनों से भीतर उतरने के लिए दो तरफ दरवाजे हैं। दोनों दरवाजों को एक लंबा गलियारा जोड़ता है और दानों तरफ से पानी तक उतरने के लिए सीढ़ियां हैं। यहीं से उतर कर बहंगियों से पानी ऊपर लाया जाता है। बाहर लगे गवाक्षों में से किसी एकाध की परछाई खंबों के बीच से नीचे पानी पर पड़ती है तो अंदाज लगता है कि पानी कितना नीला है।

यह नीला पानी किले के आसपास की पहाड़ियों पर बनी छोटी–छोटी नहरों से एक बड़ी नहर में आता है। सड़क जैसी चौड़ी यह बड़ी नहर किले की सुरक्षा का पूरा ध्यान रखते हुए किले की दीवार से नीचे उतर कर किले के भीतरी हिस्से में पहुंचती है।

वर्षा से पहले नहरों की सफाई तो होती ही है पर फिर भी पहले झले का पानी इस टांके में नहीं आता। मुख्य बड़े टांके के साथ दो और टांके हैं, एक खुला और एक बंद। इन टांकों के पास खुलने वाली बड़ी नहर में दो फाटक लगे हैं। शुरू में बड़े टांके की ओर पानी ले जाने वाली नहर का फाटक बंद रखा जाता है और खुले टांके का फाटक खोल दिया जाता है। पहले झले का पानी नहरों को धोते–साफ करते हुए, खुले टांके में चला जाता है, और फिर उससे सटे बंद टांके में। इन दोनों टांको के पानी का उपयोग उस समय किले की सफाई–धुलाई और पशुओं के काम आता रहा है। जयगढ़ किला था और कभी यहां पूरी फौज रहती थी। फौज में हाथी, घोड़े ऊंट–सब कुछ था। फिर इतने बड़े किले की साफ–सफाई भी इन पहले दो टांकों के पानी से होती थी।

पानी का खजाना

जब पानी का पूरा रास्ता, नहरों का पूरा जाल धुल जाए, तब पहला फाटक गिरता है और दूसरा फाटक खुलता है और मुख्य टांका तीन करोड़ लीटर पानी झेलने के लिए तैयार हो जाता हैं। इतनी बड़ी क्षमता का यह टांका किले की जरूरत के साथ–साथ किले की सुरक्षा के लिए भी बनाया गया था। कभी किला शत्रुओं से घिर जाए तो लंबे समय तक भीतर पानी की कमी नहीं रहे।

राजा गए, उनकी फौज गई। अब आए हैं जयपुर घूमने आने वाले पर्यटक। अच्छी खासी चढ़ाई चढ़ कर आने वाले हर पर्यटक की थकान इस टांके के शीतल और निर्मल जल से दूर होती है। सैंकड़ों बरस पुराना टांका आज भी काम आ रहा है। यह करोड़पति टांका आज भी वर्षा की कीमती रजत बूंदें जुटा रहा है और इस तरह एकत्र हुआ पानी का खजाना बढ़ा रहा है।

कहते हैं इसी टांके में जयपुर के राज घराने ने अपना पैतृक खजाना छिपा कर रखा था। देश में जब सन् 1975 में आपातकाल लागू हुआ था, तब जयगढ़ किले को चारों ओर से घेर कर उस कीमती खजाने की तलाश में इस टांके का सारा पानी बड़े–बड़े पंपों की मदद से बाहर उलीच दिया था। पूरे टांके के आसपास बेतरतीब ढंग से जगह–जगह खुदाई की गई थी। इस सबसे टांके के मुख्य भाग पर भी असर पड़ा था, नींव, दीवारे कुछ कमजोर हो गई थी।

यह तो पता नहीं चला कि तब सरकार को वह गुप्ता खजाना मिला कि नहीं, पर इतना तो पक्का है कि पानी का एक शानदार काम, पानी का एक दुर्लभ खजाना उसकी आंख के सामने था। सरकार उसका रहस्य समझ लेती तो पानी के मामले में लगभग कंगाल होती जा रही उसकी नगर पालिकाएं सम्पन्न बनने का एक सरल–सहज तरीका जान लेतीं।

यक्ष प्रश्न का उत्तर

साधारण गृहस्थ के एक घड़े से लेकर राजा, उसकी फौज के लिए कुछ करोड़ घड़े पानी भरने वाली यह रीत कुंड़ों, टांकों की यह शानदार परंपरा आज भी जारी है– उसमें कुछ क्षय हुआ है पर पानी के यक्ष प्रश्न का उत्तर अभी भी यही है – जहां बूंद गिरे, जहां रजत बूंद गिरे, उसे वहीं समेट लो।

और ऐसे कुंडों में, टांकों में ठहरा पानी कितना निर्मल हो सकता है, इसका अंदाज देश भर में बहती कहावत को भी नहीं रह होगा।

– सिकोईडिकोन जयपुर के प्रकाशन 'कुंड' से

◆◆◆◆◆◆◆◆

राजस्थान के ओरण

(अनुपम मिश्र एवं रमेश थानवी)

ओरण एक समर्पित वन का नाम है। किसी गांव विशेष अथवा उसकी एक जाति विशेष ने कोई वन अपने पितृों, अपने इष्ट देवता को यदि समर्पित कर दिया हो तो वह ओरण कहलाता है। इस वन का अपना एक संविधान कहता है कि कोई इस वन से हरा पेड़ नहीं काटेगा। कोई इस वन से किसी भी प्रकार का आर्थिक लाभ नहीं लेगा। कोई भी इस वन में बसने वाले किसी भी जीव की हत्या नहीं करेगा। इस वन के सभी चराचर जीवों को सदा सर्वदा के लिए संपूर्ण अभय देता है यह संविधान। इस वन में एक "थान" होता है जैसे, रामदेव जी का थान, भोमियां जी का थान, पाबूजी का थान, आदि। इस प्रकार यह "स्थान" उस देवता का पूजा–स्थल होता है जिसे यह वन समर्पित है। यदि यह पूजा–स्थल वन में न हो तो उसके आस–पास कहीं होता है। वन उसी लोक देवता के नाम समर्पित होता है। उसी देवता की सम्पत्ति होता है। एक मान्यता है कि ऐसा वन उस देवता के निवास का स्थान होता है। वे देवता इसी वन में विचरते हैं। विहार करते हैं व यहीं बसते हैं।

उऋण होने का हरा–भरा प्रयास

"ओरण" शब्द का अर्थ बहुत सरल है और बहुत व्यापक भी। इसे यूं समझा जा सकता है– औ–ऋण अर्थात् उऋण। ये वन देवताओं या पितृों के ऋण को उतारने के हरे–भरे प्रयास होते हैं। राजस्थानी में यदि कोई बोलता है औरिण तो अर्थ होता है। "यह ऋण" अर्थात ऋण के बोध की अभिव्यक्ति। ये वन इस प्रकार हमारे परम्परागत समाजों द्वारा महसूस किये ऋण बोध की अभिव्यक्ति भी हैं और उस ऋण को चुकाने के जीते–जागते, हरे भरे एवं विनम्र प्रयास भी।

राजस्थान के ओरण पेड़ पौधों और नाना वनस्पतियों को अपनी पूर्ण स्वतंत्रता के साथ पुष्पित, पल्लवित होने का खुला अवसर देते हैं। इन वनों में कहीं भी किसी भी तरह की दखल सर्वथा वर्जित है। कोई सड़क भी इन वनों के बीच में होकर नहीं गुजरती। पगडंडियां हैं जो वनस्पतियों को बचा कर चलते पांवों से बने प्रमाणों की तरह जमीन पर उकेर दी गयी हैं। इन वनों ने गायों, बकरियों, भेड़ों, हिरणों आदि सभी वन्य जीवनों को सदा अभय दी है। सभी यहां सुरक्षित हैं। गायों का सूखा गोबर तथा सूखी झाड़ियां ईंधन के रूप में बटोरने की अनुमति ये वन अवश्य देते हैं। इस प्रथा के चलते लोगों का वनों में आना जाना होता है, उनकी निगरानी रहती है और गांवों का इन वनों के साथ रिश्ता भी बना रहता है। ऐसे जीवंत संबंधों के कारण ही इन वनों में जगह–जगह पेड़ों पर पक्षियों के लिए पीने के पानी के छींके टंगे रहते हैं। गांव वाले आते जाते इन छींको में पानी भरते हैं।

इसी प्रकार चिड़ियों को चुग्गा डालने तथा कीड़ी–नगरा सींचने की सनातन प्रथा भी अविरत चलती रहती हैं। चीटियां तथा चीटों के जमीन में हरने के स्थान पर आटा या दूसरा आहार डालने की प्रथा को "कीड़ी नगर सींचने" का नाम दिया गया है। यह शब्द हशी इस बात का परिचयक है कि हमारा परम्परागत समाज कीडिरूों की नगर सभ्यता से वाकिफ था। चिड़ियों और चीटियों का चुग्गा डालने की इस अदभुत परम्परा को ओरण ने बनाए रखा था।

ऐसे ही हिरणों व दूसरे वन्य जीवों के पानी पीने के लिए कई जगह पत्थर या सीमेंट की खेलियां रखवाई जाती हैं। इनमें समय–समय पर पानी भरा जाता है। कई ओरण ऐसे हैं। जहां वर्षा का पानी एकत्रित करने के लिए तालाब, नाले या तलाइयां बनी होती हैं। गांव के लोग हर गरमी में बारिश आने से पहले इनको गहरा करते हैं। इनकी "आगोर" को साफ करते हैं। पानी आने के मार्ग को ही आगोर कहते हैं। आज इसे अंग्रेजी में कैचमेन्ट कहते हैं। इसकी ढलान को बनाए रखना तथा पानी के मार्ग में आने वाली रूकावटों को हटाना गांव वाले अपना धर्म मानते हैं– और वे सदियों से इस धर्म का निर्वाह करते चले आ रहे हैं।

रखवाली ही हरियाली

प्राकृतिक वन संपदा की सहज रखवाली की यह एक सुंदर परंपरा है। रखवाली का ऐसा कर्तव्य–बोध हमारे गांवों को दरअसल लोक देवताओं से ही मिला है। राजस्थान के लोक देवता धरती के रखवाले थे। गायों व दूसरे जानवरों के रखवाले थे, पानी के रखवाले थे। जंगलों के, वनस्पतियों के, प्रकृति के रखवाले थे। मानवता के रखवाले थे, और धर्म की उनकी दृष्टि व्यापक और उदार थी। यह उतनी ही उदार थी जिनकी प्रकृति स्वयं है। उनके धर्म में भेद–भाव को कोई स्थान नहीं था। रामदेव जी पीर भी और देवता भी। सारी वंचित, पीड़ित जातियों के लोग उनके अनुयायी थे। इसी प्रकार बाकी लोक देवता भी। ये देवता समाज में न्याय के संस्थापक थे। अन्याय से लड़ते थे। और यही कारण था कि अधिसंख्य लोक देवता लड़ते–लड़ते शहीद हुए थे, इंसानियत तथा कुदरत की रखवाली करते हुए मरे थे। संभवतया यही कारण है कि इनके ऋण को चुकाने का "ओरण" से अच्छा दूसरा कोई भी उपक्रम हो नहीं सकता था। ओरण कुदरत के जर्रे–जर्रे की रखवाली का ही दूसरा नाम हे।

ओरणः आस्था बोध की अभिव्यक्ति एवं संरक्षण

राजस्थान के ओरण और भारत में अन्यत्र भी जहां भी ये हैं– लोगों के आस्था बोध एवं ऋण–बोध की जीती–जागती मिसालें है। यह अलग बात है कि आज इस आस्था बोध में कहीं कुछ कमी आई है।

लेकिन फिर भी शहर से दूर, गांवों में अभी भी इसके दर्शन होते हैं। ओरण स्वयं ही इसके उदाहरण हैं। ओरण न केवल आस्था–बोध की अभिव्यक्ति हैं बल्कि इसके संरक्षण के, इसे बनाये रखने के भी सफल प्रयास हैं। इन ओरणों ने न केवल लोक आस्थाओं को सींचा है बल्कि उसे बचाये रखने के लिए एक सांस्कृतिक अवसर दिया हैं। ओरणों का आज तक बने रहना ही इस बात का सबूत है कि लोक अब तक वनों के प्रति, धरती के प्रति, जीव जंतुओं के संरक्षण के प्रति तथा लोक देवतओं के प्रति आस्थावान हैं।

ओरणः लोक देवताओं की गाथाओं का संरक्षण

ओरण के साथ जुड़ी लोक देवताओं की गाथाएं भी आज तक जिंदा हैं। लोक जीवन में एवं लोक व्यवहार पर इनकी अमिट छाप आज भी देखी जा सकती है। इन गाथाओं ने निरन्तर एक नीति–मार्ग की रचना की है। किसी ने उसे पथ कहा है तो किसी न संप्रदाय। इस नीति–मार्ग ने सदियों तक लोक व्यवहार को नियंत्रित, संचालित किया हैं। ये गाथाएं अपने आप में महाकाव्य का विस्तार रखती हैं। और यही कारण है कि इन गाथाओं ने जीवन को भी सदा व्यापक सहिष्णुता दी है। व्यापक दृष्टि दी है। इन गाथाओं के संरक्षण का काम ओरण संस्कृति में सहज रूप से होता रहा है।

राजस्थान की ओरणों और प्रदेश का पर्यावरण

राजस्थान की ओरणों का प्रदेश की प्राकृतिक भौगोलिक और पर्यावरणीय परिस्थिति से सीधा संबंध है। अरावली के इस तरफ ओरण और उस तरफ 'देव–बनी' या 'राखत–बनी' के नाम से जानी जाने वाली इस पंरपरा ने प्रदेश के पर्यावरण संरक्षण एवं संतुलन बनाये रखने में निरंतर योगदान दिया है। यह परंम्परा न केवल पर्यावरण संरक्षण व संतुलन बनाये रखने की परम्परा है बल्कि ऐसा करने के मार्गों व पद्धतियों के अन्वेषण की परम्परा भी है। इन तौर–तरीकों के प्रभाव व परिणाम के जीवंत सबूत हैं हमारे ओरण।

पर्यावरण संरक्षण की इस परम्परा ने राजस्थान की जैविक विविधता एवं सम्पूर्ण वनस्पति के साथ इस प्रदेश के लोगों का रिश्ता जोड़ा है और हर वनस्पति के गुण–धर्म को जानकर इसके उपयोग से हमें अवगत कराया है।

अहिंसा की सार्वभौमिक अनुपालना के अभ्यास–गृहः हमारे ओरण

राजस्थान के ओरणों ने एक उदाहरण पेश किया है प्रत्येक जीवन व प्रकृति के प्रत्येक पेड–पौधे के

प्रति एक नितांत अहिंसक रिश्ता कैसे विकसित किया जा सकता है। कैसे अहिंसा का सहज अभ्यास साधा जा सकता है? किस प्रकार एक मूल्य के रूप में अहिंसा का बीज रोपा जा सकता है और किस प्रकार एक मूल्य का हरा–भरा बाग लगाया व निरन्तर सींचा जा सकता है। और यह काम एकाध पीढ़ी के लिए नहीं दस–बीस पीढ़ी के लिए भी चलाकर दिखाया है इस समाज ने।

लेकिन आज हमारा समाज जीवन की इन बुनियादी बातों को भूलने लगा है। बहुत से गांव में ओरण की भूमि को अब उस श्रद्धा और पवित्रता से नहीं देखा जाता।

थोड़ी–सी नई पढ़ाई पढ़ लिख गए समाज के नए लोगों ने इन बातों को पुराना कह कर ठुकरा दिया है। आश्चर्य की बात तो यह है कि पुराना ढांचा अलग करते हुए, उसे पूरी तरह से मिटाते हुए समाज के इस नए वर्ग ने बदले में कई सार्थक ठीक ढांचा नहीं खड़ा किया है, आधा अधूरा भी नहीं।

हमारे जीवन के लिए, गांव के जीवन के लिए, कृषक और पशु पालक समाज के लिए वनों का महत्व कितना अधिक है, यह बताना आवश्यक नहीं। कोई 200 साल पहले अंग्रेजों ने जब जाने–अनजाने में इस सब व्यवस्थित ढांचे को तोड़ना शुरू किया था, तो उन्होंने उसके बदले जो कुछ खड़ा किया था वह अपनी जरूरत के लिए खड़ा किया था। समाज की जरूरत के लिए, समाज की आवश्यकता, उसके सुख–दुख से उसका संबंध नहीं था। लेकिन आजादी के बाद तो इस सब पर फिर से विचार किया जाना चाहिए था। लेकिन तब भी यह सब ज्यों का त्यों रहा।

दुर्भाग्य से न तो सरकारों का, नेतृत्व का इस तरफ ध्यान है और न सामाजिक संस्थाओं ने ही इस बड़े विषय को छूने में कोई विशेष रूचि दिखाई। सभी लोग अंग्रेजों की भारी–भरकम, खर्चीली, अव्यवहारिक विरासत को ढोने में लगे रहे। यदि कभी कुछ सुधार भी हुआ तो वह भी उसी ढांचे के दोषों को ढकने के ख्याल से किया गया लगता है।

उदाहरण के लिए जब वन नीति के विरूद्ध कुछ आवाज उठने लगी, हलचल बढ़ने लगी तो सामाजिक वानिकी के नाम से एक बड़ी योजना देश के सामने आई थी। देश के सभी राज्यों के वन–विभागों ने इसे अपने ढंग से, कुछ हद तक स्वतंत्र रूप से, कुछ हद तक सामाजिक संस्थाओं की मदद से लागू किया था। संयुक्त राष्ट्र संघ से लेकर विदेशी अनुदान व सहायता जुटाने वाली लगभग सभी संस्थाओं ने तब इसे अपना प्रमुख मुद्दा बनाया था। लेकिन आज हम पाते हैं कि सामाजिक वानिकी का नाम लेने वाला कोई नहीं है।

सामाजिक वानिकी का ऊंचा लहराता हुआ झंडा कब फट गया, कब नीचे उतार लिया गया, इसकी तरफ भी किसी का ध्यान नहीं गया।

देश में इस कोने से उस कोने तक– सचमुच कश्मीर से लेकर कन्याकुमारी तक–वनों के प्रबंध के बारे में हमारे समाज ने कुछ व्यवस्थित निर्णय लिए थे। इसमें तने बड़े देश के लिए कोई बड़ी योजना बनाते समय जो सावधनियां बरतने चाहिए, वे सब बरती गई थीं।

पहली सावधानी तो यही थी कि कदम–कदम पर परिस्थिति बदलती है। इसलिए योजना का रूप भी बदलना चाहिए। देश में इस कोने से उस कोने तक ओरण परम्परा एक समान, सुंदर, मजबूत धागे में अलग–अलग पिरोये गए फूलों की माला की तरह बनाई गई थी। हर फूल का आकार, रंग और सुगंध अपने–अपने ढंग की थी। कहीं इसे 'देवराई' कहा गया तो कहीं 'सरना'। सरना शबद संभवतः वनदेवी की शरण– इस भाव से बनाया गया होगा। कहीं इसे 'रैखन' कहा गया तो कहीं 'रखतबनी' भी कहा गया। सबमें भाव यही था कि इस वन विशेष को संभाल कर रखना हैं।

प्रायः इन सब परम्पराओं में इसे उस क्षेत्र में व्याप्त किसी देवी या देवता को समर्पित किया जाता रहा है। इनके आकार–प्रकार भी उस क्षेत्र विशेष की आवश्यकता को देखते हुए छोटे–बड़े होते थे। मरूभूमि में वनों की, हरियाली की, पेड़–पौधों की सबसे ज्यादा जरूरत भी है, और पर्यावरण के हिसाब से महत्व भी, इसलिए मरूभूमि की ओरण सैकड़ों हेक्टेयर में फैली होती थी। इस अनुपात को देखें तो महाराष्ट्र, बिहार आदि में मरूभूमि के मुकाबले आधी और चौथाई ओरण भी काम दे जाती थी।

इन ओरणों में एक तो पूरी श्रद्धा के साथ वन संरक्षण किया जा सकता था, फिर साथ ही आज जिसे अंग्रेजी में बायोडायवर्सिटी कहा जाता है, उसका भी पूरा विस्तार सुरक्षित रखा जाता था। उस क्षेत्र की सबसे महत्वपूर्ण प्रजाति के सर्वोत्तम पेड़ वहां की ओरण, सरना या देवराई में सुरक्षित रखे जाते थे। आज भी वन–विभागों के पास शायद इतने अच्छे साल के, सागौन के पेड़ नहीं मिलेंगे, जितने अच्छे वहां की सरना में मिलते हैं। अनेक स्थानों में ओरण में बड़े पेड़ों के अलावा दुर्लभ प्रजाति की झाड़ियां, वनस्पति और जड़ी–बूटियां भी बचाकर रखी जाती थी।

लेकिन इतने महत्वपूर्ण ढांचे को हमने बिना समझे तोड़ दिया। हमने उसकी उपेक्षा की, उसकी प्रतिष्ठा हर ली और उसकी देखरेख करने वाली – व्यवस्था को तोड़ दिया। ऐसे में किसी भी विचारधारा की सरकार आई हो, कितना भी सुहृदय अधिकारी रहा हो, कितना भी कुशल नेतृत्व रहा हो, वह ओरणों की तरफ ध्यान नहीं दे पाया। आज से पच्चीस साल पहले बहुत से ओरण उस समय के लोकप्रिय माने गए 'बीस सूची कार्यक्रम' में नष्ट कर दिए गए थे। किसी भी राज्य में इस समृद्ध वन क्षेत्र की गिनती वन–विभाग की भूमि के अंतर्गत नहीं की जा सकी थी। बहुत हुआ तो इन्हें राजस्व का हिस्सा माना गया एक ऐसा हिस्सा जिसे जिले के अधिकारी गांव से बिना पूछे हुए किसी भी काम में झोंक सकते हैं, कभी भी दो कोड़ी के वोट के लिए बांट सकते हैं।

सौभाग्य से पिछले कुछ समय से लोगों का ध्यान फिर से ओरणों की तरफ से जाने लगा है। कुछ स्वयंसेवी संस्थाएं भी, कुछ गांव भी इस स्वयं सिद्ध और समयसिद्ध परम्परा का महत्व फिर से समझने लगे हैं। कुछ जगह स्वयं वन विभागों ने अपने क्षेत्र में व्याप्त ओरणों का सर्वे किया है।

निः संदेह यह प्रारम्भ ही है। पर निश्चित ही एक शुभ लक्षण भी है। अभी हम सबको इसे समझने की दिशा में एक लम्बा रास्ता तय करना है। फिर भी यह क्या कम है कि अब हमारे हाथ में पहली बार राजस्थान राज्य के अधिकांश जिले के ओरणों की सूची आ रही है। हम सब यदि इस दिशा में अपना कर्तव्य पूरा करें तो देखते ही देखते हम अपने प्रदेश की ओरणों की वर्तमान स्थिति समझ सकेंगे। तब सब मिलकर इनके सुधार की दिशा में भी एक मजबूत कदम उठा सकेंगे।

पिछले दौर में हमने अपनी समस्याओं के हल के लिए आधुनिक मानी गई नई पद्धतियों को अपनाकर देख लिया है। दुर्भाग्य से वे हल हमें पूरी तरह से सहारा नहीं दे पाये। आज इसीलिए फिर से अपनी परम्परा की तरफ देखने का अवसर आया है।

ओरण पर फिर से लौटने का समय आ गया है। ओरण राजस्थान में फैलते सूखे, अकाल को एक बार फिर हरियाली की चादर से ढक सकेंगी।

– सिकोईडिकोन जयपुर के प्रकाशन 'ओरण' से

◆◆◆◆◆◆◆◆

पानी पर लिखी इबारत

(प्रभाकर श्रोत्रिय)

प्रकृति जो आदि्म युग से हमारे जीवन का आधार रही है और आज भी हर पल हमारे साथ रहती है; हमारे राग–विराग, सुख–दुख, विचार–दर्शन और पोषण–सृजन में गुँथी हुई है, उसे आधुनिक जीवन लगातार हमसे छीन रहा है। हम ऋतुएँ और ऋतूत्सव भूलते जा रहे हैं और इसी क्रम से सरलता, निश्छलता, मर्यादा, उल्लास–आनन्द, यानी अपना व्यक्तिगत सुख और सामूहिक जीवन के रंगारंग पर्व, उत्सव और सरोकार रचनाओं से तेजी से झिरते जा रहे है। उनकी खाली जगह भर रहा है एक कृत्रिम–सिंथेटक–संसार, जहाँ हम एक दूसरे का विश्वास, आत्मीयता और अंतरंगता खोते चले जा रहे हैं; और बदले में पा रहे हैं– पारस्परिक आशंका, संदेह और अविश्वास।

आज आत्यंतिक स्वार्थ ने मनुष्य के चारों ओर ऐसे निष्करूण और निर्लज्ज संसार की सुष्टि कर दी है जिसने प्रकृति के भौतिक अस्तित्व को विनाश के कगार पर पहुँचा दिया है। ऐसे समय साहित्य में जल को पुकारना जीवन की पुनर्रचना का आह्यन है। क्योंकि मनुष्य ने संसार से सबसे मूल्यवान और गतिमान जीवन–तत्व को प्रदूषित कर दिया है। उसे उसके ठिकानों से खींचकर बंधक बनाया जा रहा है; धरती की कोख लगातार खोखली की जा रही है, उसमें उतना भर पानी भी नहीं बचा जिसमें गर्भ तैर कर रूप लेता है। पहले तो पानी में जहर मिलाया जा रहा है फिर उसी की परिशुद्धि के नाम पर एक पूरा बाजार विकसित किया जा रहा है। अजब दुश्चक्र है। जिस जल को किसी जमाने में ऋषियों ने 'आपो ज्योति रसोऽमृतम्'– ज्योति, रस और अमृत कहा था, उसे किस रूप में हम अगली पीढ़ियों को सौंप रहे हैं?

ऐसी चिंताओं में साहित्य की शिरकत बेहद जरूरी है। क्योंकि साहित्य के लिए जल केवल भौतिक अस्तित्व नहीं एक विराट, विविध सर्जना है; वह उसकी अभिधा ही नहीं, लक्षणा और व्यंजना है; रस है, बहुरूप–सृष्टि है।

वैसे भी जल सृष्टि का आदि तत्व है, वह न केवल जीवन को धारण करता है, स्वयं जीवन है, जब से प्राण बने, तभी से पानी उसके भीतर वैसे ही प्रवेश कर गया था, जैसे मनुष्य की शिराओं में अनजाने ही रक्त प्रवेश कर जाता है। तभी तो यह आदि काव्य का मुख्य सन्दर्भ बना। ऋग्वेद का 'अप् सूक्त' जल पर लिखी विश्व की पहली कविता है। इसके बाद वैदिक, औपनिषदिक साहित्य में जल पर या जल के सन्दर्भ में अपरिमित लिखा गया, जल देवताओं के रूप में इन्द्र और वरूण की सृष्टि हुई। महाभारत के भीष्म गंगा से जनमे और अर्जुन इन्द्र से। कृष्ण को जीवित दूसरे पार पहुँचाने के लिए यमुना ने अपना उफान संयत कर लिया। आदि कवि के श्लोक का शोक आज भी पलकें भिगो देता है। यह वही जल है जिसके बारे में महादेवी ने कहा हैः " आग हूँ जिससे ढुलकते बिन्दु हिम जल के।'

तो 'पानी और जीवन' या 'पानी और साहित्य' पर सोचते हुए विषय की कई परतें खुलने लगती हैं, और लगता है कि साहित्य में ही पानी का कितना अर्थ– विस्तार और अर्थ गांभीर्य है! क्या यह मात्र संयोग है कि भारत जैसे कृषि प्रधान देश में लिखा गया काव्य 'मेघदूत' संसार की सर्वाधिक भाषाओं में अनूदित हुआ और दो हजार वर्षों से दुनिया की मनीषा और जन सामान्य का प्रिय काव्य बना हुआ है? यह वास्तव में 'आषाढ़स्य प्रथम दिवसे' से प्रारंभ वर्षा ऋतु का काव्य है जो जल के साथ प्रेम–संदर्भ का भी संवहन करता है और एक विाट प्राकृतिकट आयामक` साथ ही जीवन के अनेक पक्षों और मूल्यों पर भी अत्यंत सारगर्भित टिप्पणी करता है। इसी से पानी की अनेक अर्थ संभावनाओं का संकेत लिया जा सकता है। यों, पुणे के श्री भावे ने वायुयान में बैठकर मेघपथ की यात्रा की थी और उसकी प्रामाणिकता पर मुहर लगाई थी, परन्तु भारतीय कवि की उस दृष्टि के लिए उसे द्रष्टा ही कहना चाहिए जिसने मेघ में प्राण, चेतना, संवेग और विचार देखे।

जिस तत्त्व से मनुष्य का रिश्ता जितना पुराना होता है, वह उसकी भाषा और सृजन में बहुरूपी बनकर समा जाता है। वह उसकी कथाओं में, गीतों में, रूपकों, मिथकों, प्रतीकों, बिम्बों, मुहावरों में; उसके दर्शनों, विचारों विवेचनों में इस तरह शामिल हो जाता है, जिसे अलग से पहचानना मुश्किल होता है। उदाहरण के लिए जब कबीर को जीवन की क्षण भंगुरता बतानी होती है तो वे कहते हैं ' पानी केरा बुदबुदा अस मानुस की जात।' आत्मा और परमात्मा की अभिन्नता बतानी होती है तो कहते हैं ' जल में कुंभ, कुंभ में जल है' और अन्त में कहते हैं– 'फूटा कुंभ जल जलहि समाना।' तुलसी को खल के इठलाने पर व्यंग्य करना होता है तो कहते हैं–'छुद्र नदी जल भरि उतराई, जस थोरे धन खल इतराई', प्रेम, वियोग, भक्ति और जीवन– व्यवहारों की व्यंजना के लिए जल का, वर्षा का, नदी का अपरिमित रचनाओं में सन्दर्भ और संकेत आया है। पानी अक्सर स्वभाव की निर्मलता और पारदर्शिता के उपमान के रू` में इस्तेमाल होता है। परन्तु वह स्वच्छंदता और विद्रोह का प्रतीक भी हे। बांग्ला में एक निर्मल व्यक्ति के लिए 'जॉलेर मतो' (जल के समान) कहा जाता है। जबकि रवीन्द्रनाथ की कविता 'निर्झरेर स्वप्न–भंग' स्वच्छंदतावादी सर्जनायुग का उद्घोष हे।

नए युग का एक द्रष्टा–कवि हमें फिर चौंकाता है। जल–प्रलय को वह जिस अतिचारी उपभोक्तावाद से जोड़ता है, वह स्तब्ध कर देता है। जयशंकर प्रसाद की 'कामायनी' उस विकराल प्रलय से प्रारंभ होती है जिसमें उदधि सारी धरती को डुबोकर मर्यादाहीन हो गया था। मर्यादा के इस एकमात्र धारक को उन्मत्त विलासी, अपार दम्भी और भयावह अतिचारी देवजाति को खत्म करना था, जिसने उपभोग की सारी मर्यादाएँ तोड़ दी थीं। देवों को पता ही नहीं था कि कोई उन्हें अपनी जासूसी निगाहों से आँक रहा है– और यह सृष्टि को धारण करने वाला जल हैः जिसे शायद उचित संचालन का जिम्मा

भी प्रकृति ने दिया है। उसी जल ने अपने मर्यादाहीन होने की कीमत पर भी तमाम अमर्यादाओं को डुबो दिया, ताकि एक बार सफाई हो जाने के बाद नए सिरे से सृष्टि रची जाए। हमारे युग में भी उसी दंभ का पुनरावृत्ति हो रही है। 'मैं पाँच सितारा श्रृंखला का स्वामी', 'मैं महा दादा', 'मैं बहुराष्ट्रीय कंपनियों का मालिक', 'मैं विश्व–व्यापार संगठन', 'मैं विश्व बैंक', 'मैं विश्व बैंक', 'मै' ... 'मैं'..... मुझे हक है कि गंगा में, कावेरी में, ब्रह्मपुत्र में, सिंधु में, गोदावरी में... अपने उद्योग का मल–मूत्र विसर्जित करूँ। यही तो है उन्माद, अहंकार और उपभोक्तावाद की पराकाष्ठाः जो अपने हित के लिए पूरी मानवता को हलाहल पिलाने में भी कोई संकोच नहीं करती। कामायनी से हम यह संकेत ले सकते हैं कि यह नया उपभोगवाद भी निश्चय ही अपनी मर्यादाहीनता के चलते एक नया प्रलय लाएगा। मुट्ठीभर लोगों और मुट्ठीभर देशों द्वारा विश्व को प्रदूषित करने का बीड़ा उठाना एक दिन सबको ले डूबेगा। कहा जाता है कि अगला युद्ध पानी पर होगा, पर तभी न होगा जब सृष्टि जीवित बचेगी! बारंबार प्रलय का इतिहास दरअसल महाशक्तियों के अतिचार, उत्पात, अहंकार और विलास की चरम सीमा का इतिहास रहा है।

भारत में जल को जो मान्यता मिली हुई है, वह भले ही एक निष्प्राण कर्मकाण्ड में ढल गई हो, परन्तु जल हाथ में लेकर संकल्प लेना, यानी जल को साक्षी मानना, जल छिड़क कर अपवित्रता के निवारण के लिए आश्वस्त होना, जल–कलश को मंगल विधायी मानना, किसी की मृत्यु के बाद मिट्टी का जलभरा घड़ा फोड़ कर देह–जल (आत्मा) को विराट–सृष्टि में विलीन करनाः पवित्र नदियों में स्नान, उनकी आरती उतारना आदि मूलतः केवल कर्मकाण्ड नहीं रहे होंगे, वे प्रतीक–विधान होंगेः जो जल में प्रिय, पूज्य, मंगल, आस्था, साक्षी, व्रत, आत्म आदि की प्रतीति के माध्यम रहे होंगेः और शायद यह संकेत भी देते होंगे कि जल पवित्र है, उसे पवित्र रखना है। नदियाँ पवित्रता के स्मरण में शामिल थीं, वर्षा के राग–रंग थे, गाँवों में सावन में झूले डलते थे, सुगंधित फूलों से श्रृंगार होता था, फुहारों का आनन्द लिया जाता था, किसी उद्यान, पहाड़ी स्थान या नदी किनारे भोज–उत्सव–समारोह होते थे। हमारे सारे लोक उत्सव ऋतुओं से जुड़े हैं। जो हो, यदि ये प्रथाएँ और कर्मकाण्ड भी हों तब भी इस घनघोर प्रदूषण के युग में इन्हें अपनी मान्यताओं और अवधारणाओं का भाग बना लेने में कोई हर्ज नहीं। क्योंकि जल को जो पदवी मिली थी, उससे उसे अपदस्थ करके हमने संवेदना का एक बड़ा संसार खो दिया है।

अमृतवाही जल को लक्षित करने के लिए हमने परम्परा से कुछ झलकियाँ दी हैं जो जल के पवित्र रूप, उसमें निहित आध्यात्मिकता, प्रेम, सौन्दर्य, क्रीड़ा और सहजता को ध्वनित करती हैं। आधुनिक काल के प्रारम्भ में भी जल संबंधी मनोरम सृष्टि हुई है। छायावादी रचनाएँ इसका सर्वश्रेष्ठ प्रमाण हैं।

पाँचवे दशक के आसपास औधोगिकता की अति और उससे होने वाले प्रदूषण की चिंता, बाँधों का निर्माण और विस्थापन, पानी की राजनीति, सूखे और बाढ़ के बार–बार आक्रमण से पानी संबंधी रचनाओं की दृष्टि, अनुभव और तापमान में अजब किस्म का बदलाव आया है। दूसरी ओर शहरों में जैसे–जैसे रचनाकार सघन होता गया, वैसे–वैसे उसके ऋतु–संवेदन कम होने लगे और केवल समस्याओं, विचारधाराओं में वह सिमटता गया। इधर पर्यावरण और ऋतु–चक्र का अध्ययन, विज्ञान और पारिस्थितिकी की तरफ चला गया और बाँधों से होने वाले विस्थापन की समस्या ने मानवीय चिंता और आंदोलन का रूप ले लिया।

बदलते युग में पानी संबंधी रचनाओं के बदलते स्वर से यह स्पष्ट प्रतीत होता है कि रचनाएँ पानी के प्रवाह की तरह युग–प्रवाह के अनुरूप अपना कथ्य और रूप बदलती हैं, इससे साहित्य की गतिमानता और सजगता का परिचय मिलता है। प्रकृति के बिम्ब यदि साहित्य में उतरें तो यह तो साहित्य का कर्म है ही, जैसे 'पहला गिरमिटिया' में गिरिराज किशोर द्वारा समुद्र की विकरालता के अद्‌भुत वर्णन में मानवीय उत्पीड़न की चरम व्यंजनाः लेकिन प्रकृति के सौम्य और खिलंदड़े सौन्दर्य को रूपायित करना भी जरूरी है जो आज भी यत्किंचित विद्यमान है? अमृतलाल वेगड़ को नर्मदा कितनी सुन्दर लगती है और उसके किनारे रहने वाले लोग कितने सहज–आत्मीय लगते हैं! छायावाद और बाद के युग में हजारीप्रसाद द्विवेदी, भारती, नरेश मेहता, अज्ञेय, निर्मल वर्मा, शैलेश मटियानी, राम विलास शर्मा, विद्यानिवास मिश्र, वीरेन्द्र मिश्र, शमशेर, ज्ञानेन्द्रपति, रामदरश मिश्र, शिवप्रसाद सिंह आदि रचनाकारों की अनेक रचनाओं में प्रकृति–सौन्दर्य का रूपायन हुआ है।

ग्रामवासी और वनवासी समाज प्रकृति का सबसे लाड़ला समाज है। जल उसका अभिन्न सहचर है। उसकी आस्था, विश्वास, मिथक, तरह तरह की प्रथाएँ, कविताएँ जल के विभिन्न रूपों और प्रक्रियाओं से जुड़ी हैं। बहुत सा लोक–साहित्य पानी के लिए प्रार्थना है, वह कृषि और पानी के उल्लास से भरा है, बाढ़ और सूखे के दो अतिवादों पर भी खूब रचनाएँ हैं और पानी के जरिए जीवन की बहुत मौलिक मार्मिक, व्यंजनाएँ भी।

– नया ज्ञानोदय 'बिन पानी सब सून' विशेषांक (जून 2014) से साभार

◆◆◆◆◆◆◆

तपती धरती की भावी कथा

(देवेन्द्र मेवाड़ी)

संयुक्त राष्ट्र द्वारा जलवायु परिवर्तन पर गठित अन्तर–सरकारी समिति (आई.पी.सी.सी.) ने हाल ही में योकोहामा, जापान में जारी की गयी अपनी रिपोर्ट में ग्लोबल वार्मिंग यानी वैश्विक तपन के भयानक ख़तरों से एक बार फिर आगाह किया है। इस समिति का कहना है कि अब सोचने का समय शेष नहीं रहा, इन ख़तरों से निबटने का समय आ गया है। कही ऐसा न हो कि देर हो जाये और समय हाथ से निकल जाये।

आई.पी.सी.सी. ने आसन्न ख़तरों की ओर ध्यान आकर्षित करते हुए कहा है कि अगर आज हम नहीं सँभले तो जलवायु परिवर्तन की मार से कोई अछूता नहीं रह पाएगा, सभी को यह संकट झेलना होगा। एशिया और विशेष रूप से दक्षिण एशिया का बुरा हाल हो जाएगा। भारत और चीन के लिए तो यह बड़े ख़तरे की घंटी है क्योंकि विश्व की एक तिहाई आबादी यहीं रहती है।

वैश्विक तापन से मौसम का मिजाज बिगड़ने पर जल–स्त्रोत सूख जाएँगे कहीं भयंकर सूखा पड़ेगा तो कहीं अतिवृष्टि से तबाही मचेगी जैसे 2013 में केदारघाटी में मची थी। तटवर्ती इलाक़ों में भयंकर समुद्री तूफान आते रहेंगे जैसे अक्टूबर 2013 में ओडिशा में फेलिन तूफान आया था। समुद्रों का जलस्तर बढ़ने से तटवर्ती इलाक़ों की बस्तियाँ और शहर डूब जाएँगे। दिल्ली, मुम्बई, कोलकाता, टोकियो और शंघाई जैसे शहरों में भीषण बाढ़ आ सकती है। वैश्विक तापन से ग्लेशियर पिघलेंगे और नदियों में बाढ़ आएगी। फिर ग्लेशियरों के सिकुड़ने से नदियाँ सुखने लगेंगी। जल–स्त्रोतों के सूखने से पानी के लिए त्राहि–त्राहि मच जाएगी। सिंचाई के अभाव और अनावृष्टि के कारण खाघान्न उत्पादन पर बहुत बुरा प्रभाव पड़ेगा। फसलें उगाना मुश्किल हो जाएगा। इस कारण अनाज की कीमतें बढ़ती जाएँगी और व्यापक रूप से भुखमरी फैल सकती है। कुपोषण से लाखों लोग प्रभावित होंगे। इतना ही नहीं, इन विपदाओं के कारण लाखों लोग अन्य इलाकों की ओर पलायन करेंगे। इससे आपसी संघर्ष बढ़ेगा।

आई.पी.सी.सी. ने एक और हालिया रिपोर्ट में कहा है कि ग्लोबल वार्मिंग से बचने का एक ही रास्ता है। वह यह कि विश्व के सभी देश बिना समय बर्बाद किये ग्रीनहाउस गैसों के उत्सर्जन पर अंकुश लगाएँ। रिपोर्ट में बताया गया है कि अगर पिछले चार दशकों पर नज़र डाली जाए तो वर्ष 2000 से 2010 के दशक में ग्रीनहाउस गैसों का उत्सर्जन सर्वाधिक तेजी से बढ़ा है। ये गैसें वैश्विक तपन को

बढ़ा रही हैं जिससे आबोहवा बदल रही है। इसके कारण भारी जोखिम पैदा हो गया है। अगर यह तपन घटानी है तो हमें वर्ष 2050 तक ग्रीनहाउस गैसों के उत्सर्जन में वर्ष 2010 की तुलना में 40 से 70 प्रतिशत की कमी करनी होगी।

आइए, जरा अपनी पृथ्वी पर नजर डालें जो सौरमंडल का एकमात्र ऐसा ग्रह है जिस पर जीवन है। इसमें कहीं ऊँची पर्वतमालाएँ हैं तो कहीं दूर–दूर तक फैले मैदान, कहीं गहरी घाटियाँ हैं तो कहीं विशाल रेगिस्तान। कहीं हरे–भरे जंगल, तो कहीं विशाल गीले दलदल। कहीं सदानीरा नदियाँ बहती हैं तो कहीं ऊँचे पहाड़ों से छल–छल झरने गिरते हैं। कहीं अथाह गर्मी पड़ती हैं तो कहीं कड़ाके की सर्दी। कहीं घनघोर वर्षा होती है तो कहीं पानी की एक बूँद भी नहीं बरसती।

और, मौसम? कभी खिली–खिली धूप तो कभी भीषण गर्मी, कभी शरद ऋतु के गुनगुने दिन तो कभी माघ–पूस के चिल्ला जाड़े। क्यों होता है ऐसा? यहाँ मौसम बदलते हैं। ऋतुएँ आती है, जाती हैं। ऐसा इसलिए होता है क्योंकि हमारी पृथ्वी अपनी धुरी पर खम देकर खड़ी है। यह अपना धुरी की सीध से 23.5 अंश झुकी हुई है। इसलिए जब अपनी धुरी पर धूमती है तो धूमते हुए लट्टू की तरह अंडाकार डोलती भी है। डोलते–डोलते सूर्य की परिक्रमा भी करती है। इस सब का नतीजा यह होता है कि पृथ्वी के हर हिस्से पर साल भर सूर्य की रोशनी एक समान नहीं पड़ती। इसीलिए पृथ्वी को भूमध्य रेखा के आसपास सदा बेहद गर्म होता है। लेकिन, हम ज्यों–ज्यों उत्तर या दक्षिण की ओर बढ़ते हैं तो तपन कम होने लगती है और मौसम खुशगवार लगने लगता है। और आगे बढ़ने पर तापमान कम होने लगता है और ध्रुवों पर यह न्यूनतम हो जाता है। ये हमारी पृथ्वी की जलवायु यानी आबोहवा के विविध रंग हैं। यह जलवायु की ही देन है कि पृथ्वी पर हरियाली लहलहाती हैं, कहीं झमाझम वर्षा होती है, कहीं भयानक सूखा पड़ जाता है और कहीं बर्फ़ की चादर फैल जाती है। हमारा रहन–सहन, खेतीबाड़ी और आवागमन सभी कुछ जलवायु पर ही निर्भर करता है।

लेकिन, इधर पृथ्वी को आबोहवा गड़बड़ा गयी है। पहले तक जहाँ समय पर ऋतुएँ बदलती थी। समय पर वसन्त आता था, जेष्ठ की 'छाँहों चाहत छाँह' की गर्मी पड़ती थी, समय पर वर्षा और समय पर ही जाड़ों की ठिठुरन शुरू होती थी। ऋतुओं के हिसाब से किसान खेती करते थे, बोआई और कटाई के उत्सव मनाते थे। यहाँ तक कि पशु–पक्षी भी ऋतुओं के हिसाब से अपनी लम्बी प्रवास यात्राएँ करते थे या ठंडे प्रदेशों में गुफाओं, कोटरों और बिलों में शीत निद्रा या ग्रीष्म निद्रा में सो जाते थे। नन्हीं तितलियाँ तक वसन्त के इन्तजार में प्यूपा बनकर किसी टहनी, चट्टान या दीवार से लटक जाती थीं कि वसन्त आएगा और वे पंख फटफटा कर बाहर निकल आएँगीं, मधु और पराग चूसने के लिए खिलखिलाते फूलों पर पहुँच जाएँगीं। जलवायु के साथ हर जीवधारी का बेहद नाजुक सम्बन्ध था।

अब यह सम्बन्ध भी गड़बड़ा रहा है। ऋतुएँ समय पर नहीं आ रही हैं। वसन्त समय पर नहीं आता तो फूल भी समय पर नहीं खितले। वसन्त की आहट न पाकर तितलियाँ प्यूपों के ताबूत में ही बन्द रह जाती हैं। बेमौसम बरसात होती है। बरसात भी ऐसी कि लगे प्रलय आ गया है, जैसे केदारनाथ घाटी में हुआ। अगर कहीं सूखा पड़ रहा है तो इतना सूखा कि हज़ारों लोगों के सपनों को सुखा दे। तूफान ऐसे कि ताडंव दिखाकर तबाही मचा दें। पहाड़ों में बेमौसम बारिश और ओलों की मार से बागबानों की फलदार फसलों के फूल झर गये तो मैदानों में गेहूँ की पकी हुई फसलें तबाह हो गयीं।

लेकिन क्यों? आबोहवा को यह क्या हो गया है? वैज्ञानिकों का कहना है कि आबोहवा ख़राब हो गयी है और मौसम का मिजाज़ बदल गया हैं और, यह स्वयं आदमी की करतूत का नतीजा है। अन्यथा, पहले सब कुछ ठीक–ठाक था। नदियाँ कल–कल, छल–छल बह रही थीं, हरे–भरे जंगल ठंडी बयार बहाकर हमारी साँसों के लिए प्राणवायु ऑक्सीजन दे रहे थे। हम प्रकृति में, प्रकृति के साथ रह रहे थे। लेकिन, विकास की एक एकसी मूषक दौड़ शुरू हुई कि जमीन के चप्पे–चप्पे पर कंकरीट के जंगल खड़े होने लगे। हरे–भरे जंगल कटने लगे। तथाकथित विकास के नाम पर शहर पैर फैलाने लगे। लोग यह भूल गये कि माँ प्रकृति पेड़–पौधों और हरे–भरे जंगलों में हमारी साँसें तैयार करती है। उनकी बनायी प्राणवायु ऑक्सीजन में ही साँस लेकर जीवित हैं। हमे यह नहीं भूलना चाहिए था अन्यथा वायुमंडल में हवा तो लाखों वर्ष पहले भी थी। लेकिन, उसमें ऑकसीजन नहीं थी, केवल कार्बन–डाइऑक्साइड, नाइट्रोजन और मीथेन थी। ऑक्सीजन नहीं थी तो उसमें साँस लेनेवाले जीवधारी भी नहीं थे।

जलवायु के ठीक रहने के लिए प्रकृति का कारोबार ठीक चलना चाहिए। अब बादल, वर्षा और पानी के ही चक्र को देखिए। सूरज की धूप और गर्मी से महासागरों, नदी–नालों, झील–तालाबों और नम धरती का पानी भाप बनकर ऊपर आसमान में पहुँचता है। पेड़–पौधों और घने जंगल भी जड़ों से पानी सोख कर बकाया पानी को हवा में छोड़ देते हैं। पानी की वह भाप भी आसमान में पहुँचती है। वहाँ भाप ठंडी होकर बादल बन जाती है, बादल बरस कर उस पानी को फिर धरती पर भेज देते हैं। नदी–नालों से बहता पानी सागरों तक पहुँचता है। फिर भाप बनती है, फिर बादल और वर्षा। यह चक्र चलता रहता है और उसका असर जलवायु पर पड़ता है।

इसी तरह कार्बन का एक चक्र है। हमारी पृथ्वी पर सभी जीवधारी मुख्य रूप से कार्बन के अणुओं से बने हैं। जीवधारी साँस में कार्बन–डाईऑक्साइड बाहर छोड़ते हैं। उनके मरने, गलने, सड़ने पर भी यह गैस मुक्त होती है। जब हम कोयला, ईंधन और पेट्रोलियम ईंधन जलाते हैं, वनों में आग लगती है या हमारे कल–कारखानें धुआँ उगलते हैं, तब भी बड़ी मात्रा में कार्बन–डाईऑक्साइड वायुमंडल में पहुँच जाती है।

इतनी सारी कार्बन–डाईऑक्साइड, लेकिन यह जाती कहाँ है? इसका काफ़ी हिस्सा पेड़–पौधे दिन में अपने लिए फोटोसिंथेसिस के जरिए भोजन बनाने में इस्तेमाल कर लेते हैं। रात में वे भी कुछ कार्बन–डाईऑक्साइड सांस में बाहर छोड़ते हैं। कार्बन का एक बड़ा हिस्सा प्रचीनकाल में सड़–गल कर पेट्रोलियम या फिर गर्मी से कोयले के विशाल भंडारों में बदल गया। यानी, कार्बन मुख्य रूप से वायुमंडल की कार्बन–डाईऑक्साइड और जीवाश्म ईंधनों में जमा है।

एक बात और। प्रकृति ने हवा में कार्बन–डाईऑक्साइड और अन्य गैसों की ठीक उतनी ही मात्रा रखी थी, जितनी हमारे साँस लेने के लिए जरूरी थी। जब तक ऐसा था, तब तक सबकुछ ठीक था। जीने के लिए जलवायु चाहिए थी, वह वैसी ही थी। लेकिन, फिर **लाखों वर्ष पहले दो पैरों पर खड़े हो गये मनुष्य ने गुफाओं से निकल कर नदी–घाटियों में घर बना कर बसना शुरू किया। पशुओं को पालतू बनाकर पशुपालन शुरू कर दिया। अपनी जरूरतों को पूरा करने के लिए वह जंगलो को काटकर खेती करने लगा। उसकी आबादी बढ़ती गयी, जरूरतें बढ़ती गयीं और ज़मीन हथियाने की हवस भी बढ़ती गई।** आगे चलकर उसने तथाकथित विकास की दौड़ में घने जंगलों का सफाया करना शुरू कर दिया। हरे–भरे जंगल शहरों में तब्दील होने लगे। कल–कारखानों को चलाने के लिए बड़े पैमाने पर कोयला फूँका जाने लगा। सड़कों पर लाखों गाड़ियाँ पेट्रोल का धुआँ उगलने लगीं। इस तरह हर साल लाखों टन कार्बन–डाईऑक्साइड वायुमंडल में पहुँचने लगी।

इससे वायुमंडल में प्रकृति द्वारा तय किया गया गैसों का हिसाब गड़बड़ा गया। विकास की अन्धी दौड़ जारी रहीं और आसमान में धुआँ भरता गया। फल यह हुआ की पृथ्वी पर तपन बढ़ती गयी। सूर्य की जिस गुनगुनी गरमाहट ने कभी पृथ्वी पर जीवन पनपने और उसके फलने–फूलने में मदद की थी, वह विगत कुछ दशकों में धीरे–धीरे बढ़कर अब असहनीय होती जा रही है। सूर्य की गरमाहट वायुमंडल को पार कर पृथ्वी पर पहुँचने वाली उसकी ऊर्जा या विकिरण से मिलती है। इस विकिरण में प्रकाश की किरणें तो होती ही हैं, उसमें अल्ट्रावायलेट तथा इन्फ्रारेड किरणें, एक्स–किरणें और न्यूट्रान कण भी होते हैं। अगर सूर्य का यह पूरा विकिरण सीधा पृथ्वी पर पहुँच जाये तो इस पर जीवन नेस्तनाबूद हो जाएगा। लेकिन, ऐसा नहीं होता। सूर्य का काफ़ी विकिरण वायुमंडल से टकरा कर आसमान की ओर वापस लौट जाता है। वायुमंडल को पार कर जो विकिरण या गरमाहट पृथ्वी पर पहुँचती है, उससे हमारी धरती की सतह गरमाती है और सतह से आसमान की ओर लौटती किरणों को वायुमंडल की गैसों की परत रोक लेती है। इस कारण इतनी गरमाहट बनी रहती है कि पृथ्वी पर जीवन पलता–पनपता रहे। इन गैसों की परत गर्मी को नहीं रोकती तो धरती पर तापमान

कम हो जाता, शून्य से भी कम। तब धरती पर जीना मुहाल हो जाता। इन गैसों के कारण ही पृथ्वी का औसत तापमान 33 डिग्री सेल्सियस बना रहता है।

अगर अतीत में झाँके तो लेकिन, सन् 1780 के आसपास जेम्स वाट का धुआँ उगलता भाप का इंजन आ खड़ा हुआ। रेलगाड़ी और कल–कारखानों को चलाने के लिए कोयला 'काला सोना' बन गया। औद्योगिक क्रान्ति हो गयी और मशीनों को चलाने के लिए दुनिया भर में कोयले के भंडार खोजे जाने लगे। फिर मोटरगाड़ियों और मशीनों के लिए धरती के गर्भ में छिपे प्राकृतिक तेल के दहन से आसमान में कार्बन–डाईऑक्साइड की मात्रा बढ़ती गयी। तब विश्व भर में घने जंगल थे, मनुष्यों की आबादी कम थी, गाड़ियाँ भी कम थीं। इस कारण वायुमंडल में बढ़ती कार्बन–डाईऑक्साइड के कुप्रभावों का पता नहीं लगा।

औघोगीकरण के बाद वायुमंडल में कार्बन–डाईऑक्साइड की मात्रा बढ़ती हीं चली गयी। वैज्ञानिकों को लगा कि वायुमंडल में इसके बढ़ने से तापमान भी बढ़ रहा है। जंगलों के अन्धाधुन्ध कटान से यह स्थिति और भी बिगड़ती गयी। लाखों वर्षों से कोयले, तेल और प्राकृतिक गैस में क़ैद कार्बन भी धुएँ के रूप में मुक्त होकर वायुमंडल में पहुँच गया। वैज्ञानिक ग्लोबल वार्मिंग का कारण ग्रीनहाउस गैसों को बताते हैं। यानी, वायुमंडल में मौजूद ऐसी कोई भी गैस जो इन्फारेड किरणों की गर्मी को सोख कर तापमान बढ़ा दे। मुख्य ग्रीनहाउस गैसें हैंः जल वाष्प, कार्बन–डाईऑक्साइड, मीथेन, नाइट्रस ऑक्साइड और क्लोरोफ्लुओरोकार्बन (सी.एफ.सी.) रसायन।

ग्रीनहाउस प्रभाव से गर्मी बढ़ाने वाला मुख्य अपराधी कार्बन–डाईऑक्साइड गैस को माना गया है। अनुमान है कि हर साल करीब 3.2 अरब टन कार्बन–डाईऑक्साइड वायुमंडल में पहुँच रही है। औघोगिकीकरण से पहले की तुलना में आज वायुमंडल में यह गैस 30 प्रतिशत से भी अधिक बढ़ चुकी है। आज यह 38 भाग प्रति दस लाख भाग है तो पिछले साढ़े 6,50,000 वर्षों में सर्वाधिक है। औघोगिक क्रान्ति से पूर्व यह केवल लगभग 280 भाग प्रति दस लाख भाग था। यानी, विगत 300 वर्षों से भी कम समय में ही वायुमंडल में कार्बन–डाईऑक्साइड की मात्रा करीब 30 प्रतिशत बढ़ चुकी है। आई.पी.सी.सी. ने आशंका जतायी है कि यही हाल रहा तो 2050 तक कार्बन–डाईऑक्साइड का स्तर 450 से 550 भाग प्रति दस लाख भाग तक बढ़ सकता है जिसके कारण तापमान और समुद्रों का जल स्तर काफ़ी बढ़ जाएगा।

यों भी विगत 30 वर्षों में पृथ्वी की सतह का तापमान हर दशक में औसतन 0.2 डिग्री सेल्सियस की दर से बढ़ता रहा है। उत्तरी गोलार्ध के ऊँचें भागों में तापमान विशेष रूप से अधिक बढ़ा है जिसके

कारण बर्फ़ पिघल रहीं है। पिछले 25 वर्षों में उपग्रहों से प्राप्त आँकड़ें बताते है कि दुनिया के उपोष्ण भागों में तापमान तेजी से बढ़ रहा है। इसका असर इन भागों के ऊपर और दक्षिणी जेट धाराओं पर पड़ रहा है। इससे ध्रुवों की बर्फ़ और भी तेज़ी से पिघलेगी और सहारा रेगिस्तान और अधिक फैल जाएगा।

बढ़ती वैश्विक तपन के कारण साइबेरिया, अलास्का और अन्य क्षेत्रों में जंगलों में भीषण आग लगने की घटनाएँ भी हुई हैं। धुर उत्तर के वनाच्छादित क्षेत्रों में जमीन की सतह पर जमी 'पीट' और बर्फ की मोटी पर्माफ्रॉस्ट परत के पिघलने से उसमें संचित मीथेन तथा अन्य ग्रीन हाउस गैसें मुक्त हो जाएँगी और वायुमंडल में पहुँचकर तापमान को और अधिक बढ़ा देंगी। इस तरह तापमान 3 से 5 डिग्री सेल्सियस तक बढ़ गया तो विश्व के कई हिमाच्छादित पहाड़ों की बर्फ़ पिघल जाएगी और वे सामान्य पहाड़ रह जाएँगे।

वैश्विक तपन के कारण ग्लेशियर भी पिघलकर सिकुड़ते जा रहे हैं। हिमालय क्षेत्र में ये तेज़ी से पिघल रहे हैं और आने वाले समय में इनके कारण गाद भरी नदियों में भारी बाढ़ आ सकती है। ध्रुवों पर जमा बर्फ़ के बाद हिमालय में ही बर्फ़ के रूप में सबसे अधिक पानी जमा है। ग्लेशियरों के पिघलने से भारत, नेपाल और चीन में भारी जल संकट पैदा हो सकता है।

बढ़ते तापमान के कारण पिछले 100 वर्षों में विश्व में समुद्रों का जल स्तर 10 से 25 से.मी. तक बढ़ चुका है। तापमान इसी तरह बढ़ता गया तो ग्लेशियरों के पिघलने तथा सागरजल के गर्मी से फैलने के कारण समुद्रों का जल स्तर काफ़ी बढ़ जाएगा। इसके परिणाम भयानक होंगे। सागरतटों पर बसे शहरों के डूबने का ख़तरा पैदा हो जाएगा। महासागरों में स्थित तमाम द्वीप डूब जाएँगे। जलवायु परिवर्तन के कारण जलप्लावन की यह प्रक्रिया कई क्षेत्रों में शुरू भी हो चुकी है। हमारे देश में सुन्दरवन क्षेत्र में घोड़ामारा द्वीप का क्षेत्रफल पहले 22,4000 बीघा था जो अब केवल 5,000 बीघा रह गया है। उस 5,000 की आबादीवाले द्वीप में अब केवल लगभग 3,500 लोग रह रहे हैं। उन्हें मालूम है कि उनका यह द्वीप जल्दी ही डूब जाएगा। वैज्ञानिकों का अनुमान है 2020 तक सुन्दरवन का करीब 15 प्रतिशत क्षेत्र डूब जाएगा।

संयुक्त राष्ट्र का अनुमान है कि अगर सागरों का जलस्तर 1.5 मीटर बढ़ गया तो दुनिया भर में सागरतटों पर बसे करीब 2 करोड़ लोगों के डूबने का ख़तरा पैदा हो जाएगा। गंगा, ब्रह्मपुत्र और नील नदी के किनारे बसे शहर डूब सकते हैं। मुम्बई और कलकत्ता जैसे शहरों को लहरों घेर लेंगी। हालैंड, जमैका और मालद्वीव जैसे देश जलप्रलय की भेंट चढ़ जाएँगे। तापमान बढ़ने से हरियाली

उत्तर की ओर सिमटती जाएगी। जिसके कारण लाखों पशु–पक्षियों का जीवन संकट में पड़ जाएगा। अनुमान है कि वैश्विक तपन के कारण 2050 तक पशु–पक्षियों और पेड़–पौधों की लगभग 10 लाख से अधिक जातियाँ नष्ट हो जाएँगी।

जलवायु विज्ञानी बढ़ती वैश्विक तपन के कारण एक और आसन्न ख़तरे की ओर संकेत कर रहे हैं। वह ख़तरा है भीषण समुद्री तूफान और घनघोर बारिश। विगत लगभग पचास वर्षों में वायुमंडल की तपन से सागरों का पानी भी गरमा गया है जिसके कारण सागरों से उठने वाली भाप की मात्रा में काफ़ी इजाफा हुआ है। इस कारण तेज़ और भीषण समुद्री तूफानों की घटनाएँ बढ़ रही हैं। इसके अलावा वर्षा का पैटर्न भी बदल गया है। मौसम, बेमौसम, कहीं भी, कभी भी घनघोर बारिश हो जाती है। कहीं भीषण गर्मी पड़ रहीं होती है तो कहीं लम्बे समय तक भारी बर्फ़बारी होने लगती है। इस कारण खेती पर बहुत बुरा असर पड़ रहा है।

गर्ज यह कि ग्लोबल वार्मिंग यानी वैश्विक तापन बढ़ने से आबोहवा बदलती जा रही है। विश्व के कई भागों में भयंकर सूखा पड़ रहा है। ग्लेशियर पिघल रहे हैं। एशिया, अफ्रीका, आस्ट्रेलिया और अमेरिका में पानी का भारी संकट शुरू हो चुका है। तापमान बढ़ने से फसलों पर बहुत बुरा प्रभाव पड़ रहा है। नतीजतन उपज घट रही है। वैज्ञानिकों का अनुमान है कि वर्षा पर आधारित खेती में फसलों की उपज आधी रह जाएगी। इस तरह अकाल का साया फैलता जायेगा और विश्व भी में ग़रीब वर्ग ही नहीं, मध्यम वर्ग भी भूख से बुरी तरह प्रभावित हो जाएगा। राजेश जोशी की कविता की पंक्तियाँ याद आती हैं– आषाढ़ के बादल बिना बरसे ही इस बार / उत्तर भारत से फरार हो गये थे / मानसून से पहले की फुहारें भी इन इलाकों में नहीं पड़ी थीं / ...

समय हाथ से निकल रहा है। विश्व पर घिर रहे ग्लोगल वार्मिंग के इस महासंकट को रोकने के प्रयास अब हमें आपातकालीन स्तर पर शुरू कर देने चाहिए। बदलती आबोहवा के संकेतों के मारक क़दमों को रोकना होगा। इसके लिए दुनिया के सभी देशों के नागरिकों के साथ ही नीति निर्धारकों और राजनेताओं को भी एकजुट होकर कार्बन–डाईऑक्साइड और ग्रीनहाउस गैसों की नकेल कड़ाई से कसनी होगी।

– नया ज्ञानोदय (जून 2014) अंक से साभार

◆◆◆◆◆◆◆

कहावतें
बारहमासी

1. **एक बूंद जो चइत म परै,**
सहस बूंद सामन कै हरै
यदि चैत माह में एक बूंद पानी बरसता है तो उसके बदले सावन मास में एक हजार बूंदों की कमी हो जाती है।

2. **चैत मास दसमी बदी जो कहुँ कोरी जाय।**
चौ मासे भर बादला भली भात बरसाय।
यदि चैत माह कृष्ण पक्ष की दसवीं को पानी नहीं बरसता तो वर्षा ऋतु में चारों महीने अच्छी वर्षा होती है।

3. **चइत कै पछुआ भादों जला।**
भदौ पछुआ माघ म पला।।
यदि चैत माह में पछुआ हवा चले तो भादों मास में अच्छी वर्षा होती है पर यदि वही पछुआ भादों मास में चले तो समझना चाहिए कि माघ मास में पाला लगेगा।

4. **चइत क पानी महाबेकार।**
खड़ी फसल में बन्ठाढार।
चैत में बरसने वाला पानी बड़ा ही नुकसानदेह होता है, क्योंकि खड़ी फसल नष्ट हो जाती है।

5. **जो पानी बरखे बइसाख।**
खरिहाने में सर गैलाक।
यदि बैसाख माह में पानी बरसता है तो खलिहान में लगी लांक भीगकर सड़ जाती है।

6. **जेठमास जो तपै निरासा।**
तब जानै बरखा कै आशा।।
जब जेठ माह में खूब गर्मी पड़े तो समझ लेना चाहिए कि वर्षा ऋतु में अच्छी वर्षा होगी।

7. **जेठ माह जो बरखी पानी।**
तपी न घरती घटी किसानी।
– यदि जेठ के महिने में पानी बरसता है तो जमीन में तपन नहीं होती फलस्वरूप खरीफ की फसल अच्छी नहीं होती।

8. **उतरत जेठ जो बोले दादुर, कहै घाघ जल आबै आतुर।।**
यदि जेठ माह में अन्तिम सप्ताह में मेंढ़क बोलने लगे तो समझ लेना चाहिए कि वर्षा ऋतु शीघ्र ही आने वाली है।

9. **जेठ जरै माघ ठरै, गुड़ के डरी तबै मुहं परै।।**
यदि जेठ माह में तेज धूप और माह में खूब ठंडी पडेगी तब गन्ने की फसल अच्छी होगी और खूब गुड़ खाने को मिलेगा।

10. **जब जेठ चले पुरबाई, तब सामन धूर उड़ाई।।**
यदि जेठ के महीने में पुरवाई हवा चल रही हो तो समझ लेना चाहिए कि आगामी सावन के महीने में वर्षा नहीं होगी।

11. **मास असाढ़ गउतरी कीन, तेकर खेती होइगै हीन।**
जो किसान आसाढ़ के महीने में इधर–उधर रिश्तेदारी में मेहमानी करता है उसकी खेती नष्ट समझना चाहिए क्योंकि आसाढ़ का महिना किसानी के काम के लिए बहुत महत्वपूर्ण होता है।

12. **जो आसाढ़ के पूनू बादर घेरे चन्द।**
गाबा भइया गीत तू घर–घर होय आनंद।।
यदि आसाढ़ की पूर्णमासी को चन्द्रमा बादलों में छिपा रहे तो आप आनंद की गीत गाइये क्योंकि वर्षा अच्छी होगी फलस्वरूप अनाज की फसल घर–घर खुशहाली लाएगी।

13. **जेकरबनै असाढ़वा, ओकर वारै मास।।**
जिस किसान की खेती असाढ़ माह में समय पर हो गई हो उस के बारहों महीने अच्छे ही अच्छे रहते हैं।

14. **बाहे नहीं तै एक असाढ़, अब का बहते बारम्बार।।**
असाढ़ में तुमने एक बार खेत की जुताई नहीं कि अब बार–बार जोतने से क्या लाभ।

15. **गोहूं निकहा काहे, असाढ़ के दुइवाहे।।**
गेहूँ की फसल इतनी अच्छी क्यों है? इसलिए कि आसाढ़ में खेत की दो बार जुताई की गई थी।

16. **अउगल बरखै मास असाढ़, लाल पियर दिन होइ है गाढ़।।**
यदि आसाढ़ माह में अच्छी वर्षा हो जाती है तो जल्दी फसल की बुवाई हो जाती है फलस्वरूप किसान मजदूरों के लाल–पीले गाढ़े दिन समाप्त होकर खुशहाली का समय आ जाता है।

17. **सामन शुकला सत्तमी जो गरजै अधिरात, बरखै ता सूखा परै नाही समौ सुकाल।।**
सावन शुक्ल पक्ष की सप्तमी को यदि अर्ध रात्रि में मेघ गर्जन करे और पानी गिरे, तो समझ लेना चाहिए कि इस वर्ष सूखा पड़ेगा। पर यदि मौसम सूखा रहे तो समझना चाहिए कि फसल अच्छी होगी।

18. **बालें छोटी काहें? बिना असाढ़ के बाहे।**
तुम्हारे खेत की बाल छोटी क्यों है? इसलिए कि असाढ़ में खेत की जुताई नहीं की गई थी।

19. **सामन सूख सियारी, भादों सूचा उन्हारी।।**
यदि सावन मास में वर्षा नहीं होती तो खरीफ की फसल सूख जाती है, पर यदि भादों मास में वर्षा नहीं होती तो रबी फसल की सम्भावना भी क्षीण हो जाती है।

20. **सामन बरखै आमा झोरा, धान पकाबे अट्टाटोर।।**
यदि सावन के महीने में बड़ी–बड़ी बूंदों की वर्षा होती है तो धान की खूब पैदावार होती है।

21. **सामन सांमा अगहन जाबा, वतनै काटै जैतने बोबा।**
यदि सावन में महिने में सांवा और अगहन के महीने में जौ बोया जाय तो उतनी ही पैदावार होती है जितना बोया जाता है क्योंकि सांवा शुरू आसाढ़ और जौ कार्तिक में बोना चाहिए।

22. **सामन सुवनै परै अकाल, चींटी बहिनी देय उधार।**
सावन के महीने में तोते भूखे मरने लगते हैं क्योंकि उस समय न तो अनाज की नई फसल आ पाती है और न कोई फल ही खाने के लिए मिलते हैं इसलिए चींटियां जो घास आदि के दाने सूखने के लिए बिल के बाहर रखती है तो तोते उन्हें ही खाते हैं और फसल आने पर कर्ज पटाने के लिए आधे दाने कुतर कर फेंक देते हैं, जिन्हें चींटियां बिल में रख लेती है।

23. **सामन पुरबइया बहे भादौं बहे पछेह, हरवाहा घर छांड़ के लड़का कहौ जिआव।।**
यदि सावन के महीने में पुरवैया हवा में भादों में पछुआ चले तो हल चलाने वाले को खेती का काम छोड़कर ऐसे स्थान में चले जाना चाहिए जहां मजदूरी का काम मिल सके और परिवार का पालन–पोषण हो सके।

24. **सामन पहिली पांचे धन गरजै आधिरात तुम भागा पिय मालवा हम जाबै गुजरात।।**
यदि सावन मास कृष्ण पक्ष की पंचमी को अर्ध रात्रि में मेघ गर्जना करें तो किसान की पत्नी का कथन है कि हे पति तुम काम की तलाश में मालवा जाओ और मैं गुजरात जाउँगी क्योंकि इस वर्ष भीषण सूखा पड़ेगा।

25. **सामन शुकला सत्तमी उवतन न देखे भान, तब भर बरखा होई है जब लौ देव उठान।।**
यदि सावन शुक्ल पक्ष की सप्तमी को उगते समय सूर्य न दिखे तो उस वर्ष कार्तिक की देव अनुष्ठानी एकादशी तक वर्षा होती है।

26. **सामन भादौं खेत निदावै।**
वा किसान निकहा धन पावै।।
जो किसान सावन और भादों के महिने में अपने खेतों की निंदाई करता है उसकी फसल अच्छी होती है फलस्वरूप उसे अच्छी आमदनी होती है।

27. **सामन शुक्ला सत्तमी उवत जो देखै भान।**
की जल मिलें समुद्रमा की गंगा के ठांव।।
यदि सावन शुक्ल पक्ष की सप्तमी को उगते समय सूर्य दिख जाये तो समझ लेना चाहिए कि इतना भीषण सूखा पड़ेगा कि पानी या तो समुद्र में मिलेगा या गंगा नदी में।

28. **भादौ जेतनै बरखै जल। होय किसान क वतनै भल।।**
भादौं मे महीने में जितनी अधिक वर्षा होती है वह किसान के लिए उतनी ही अधिक लाभदायक होती है, क्योंकि खरीफ और रबी दोनों फसलों की अच्छी पैदावार की सम्भावना बढ़ जाती है।

29. **जै दिन भादौं बहे पछार। ते दिन पूष म परै तुषार।।**
जितने दिन भादों माह में पछुआ हवा चलेगी उतने ही दिन पूष माह में शीत और पाले का प्रकोप रहेगा।

30. **भादौं बदी एकादशी जो न छिटकै मेघ।**
चार मास बरखै नहीं अस कहिगे सहदेव।।
यदि भादों मास कृष्ण पक्ष एकादशी को आकाश मंडल में बादल नहीं फैला हो तो ज्योतिषी सहदेव का कथन है कि आगामी चार माह तक वर्षा नहीं होगी।

31. **धन्न भाग जहां बरस कुमार।**
वह गांव बहुत ही भाग्यशाली है जहां क्वांर के महीने में वर्षा हो गई हो।

32. **माह कुमार के बरखा।**
आधा गांव अनमन आधा हरखा।।
क्वांर माह में ऐसा पानी बरसता है कि एक ओर के खेत में पानी ही पानी जमा हो जाता है पर दूसरी ओर एक बूंद भी नहीं गिरता। फलस्वरूप आधे गांव के किसान प्रसन्न हो जाते हैं पर आधे गांव में उदासी ही छाई रहती है क्योंकि उनकी धान सूख रही होती है।

33. **कुमार के अरसी धन कै खान।**
कातिक बोये बिक्ख समान।।
क्वांर माह में अगर अलसी की बोनी की जाय तो उसकी फसल ठोस और अच्छी होती है। पर वही अलसी अगर कार्तिक में बोई जाय तो फूल के पश्चात उसमें दाने नहीं आते पर अगर उस दाने रहित फूल और फल की घेटी को जानवर खा लेते हैं तो बीमार हो जाते हैं।

34. **जो कुमार मा बरखै पानी।**
होय तिली उरदा कै हानी।।
यदि क्वांर के महीने में अधिक पानी बरसता हो तो उड़द और तिल की फसल नष्ट हो जाती है।

35. **तेरा कातिक तीन अषाढ़। चूक जाय ते जाय बजार।।**
असाढ़ में धान बोने का सही समय 3 दिन और कार्तिक में गेहू बोने के सही समय 3 और 13 महत्वपूर्ण दिनों में अपनी खेती नहीं बो पाते तो उनके खेत में अच्छी पैदावार नहीं होती। फलस्वरूप उन्हें बाजार से अनाज खरीदना पड़ता है।

36. **जो कातिक मा बरख करी।**
गोहूं केर होय बिजमरी।।
यकद कार्तिक माह में पानी बरसता है तो किसान के खेत में बोये हुए गेहूं का बीज नष्ट हो जाता है।

37 **कातिक बोबे अगहन भरै। हाकिम रूठ तड़का करै।**
जो किसान अपने गेहूँ की बुबाई कार्तिक माह में कर लेता है और अगहन में उसकी पहली सिंचाई कर देता है तो यदि उस के उपर राजस्व अधिकारी नाराज भी हो तो उसका क्या बिगाड़ लेंगे? क्योंकि खेत में इतनी फसल होगी कि वह आराम से लगान भर सकेगा।

38. **अगहन बरखे गोहू चना।**
सीका देय खेत मा घना।।
यदि अगहन के महीने में पहली वर्षा हो जाती है और किसान के खेत के चना और गेहूं सिंच जाते हैं तो उनके पौधे धने हो जाते है और खूब कल्ले फूटते हैं।

39. **अगहन बरखे हून। पूष बरखे दून।।**
माघ बरखे सवाई। फागुन बरखे मूर गमाई।।
अगहन मास में पानी बरसने से जहां खेत में भरपूर फसल मिलती है वहीं पूष में लागत की दूनी और माघ में सवाई, पर वही बरसा यदि फागुन मास में हो तो लाभ के बजाय खेती पर खर्च की गई घर की पूंजी भी डूब जाती है।

40. **अगहन माघ बोबाये जउआ।**
भ, त, भ, नहि खाइन कउहा।
जो कोई अगहन के महीने में जौ की बुवाई करते हैं तो यह निश्चित नहीं है कि फसल पक कर आयेगी, क्योंकि बोते समय ही कौआ उसे निकाल–निकाल कर खा जाते हैं।

41. **गोहूँ यतना काहे? कातिक के चौबाहे।।**
गेहूँ इतना अच्छा क्यों है? इसलिए कि खेत की कार्तिक मास में चार बार जुताई की गई थी।

42. **पानी बरखै आधा पूष।**
आधा गोहूं आधा भूस
यदि पूष माह में जाड़े की वर्षा हो जाती है तो गेहूं के दाने और भूसे दोनों की पैदावार बढ़ जाती है।

43. **माघ पूष जो दक्खिन चलै।**
तौ सामन के लच्छन भलै।
यदि पूष और माघ के महीने में दक्षिण दिशा वाली हवा चलती है तो सावन में अच्छी वर्षा होने की सम्भावना रहती है।

44. **माघ मास जो गिरै मघाउट।**
गोहूं भूसा होय अघाउट।।
यदि माघ के महीने में महावट की वर्षा हो जाती है तो गेहूं के दाने और भूसा दोनों की अच्छी पैदावार होती है।

45. माघ म उक्खन जेठ मा जाड़। पहिलेन बरखा भरगा ताल।।
कहैं घघ हम होव बियोगी। कुइंया खोद के धोइहैं धोबी।।
यदि माघ के महीने में ठंडी न पड़े और जेठ में हल्की ठंड़ी पड़े तथा पहली वर्षा में तालाब भर जाय तो समझना चाहिए कि इस वर्ष इतना सूखा पड़ेगा कि किसान परेशान हो जायेंगे और धोबी कुंआ खोदकर कपड़ा साफ करेंगे।

46. माघ म बादर लोहित करै। तब जाना की पथरा परै।।
यदि माघ के महिने में आकाश मंडल में लाल रंग के बादल घुमड़ रहे हों तो समझा लेना चाहिए कि शीघ्र ही ओला पड़ने की सम्भावना है।

47. माघ मास के बरखे पानी। गोहू पकै मसूर के हानी।
यदि माघ के महिने में महावट की वर्षा होती है तो गेहूं की पैदावार तो बढ़ जाती है परन्तु मसूर की फसल नष्ट हो जाती है।

48. माघ सुदी आठै घन गरजै। तो महिना भर पानी बरखै।।
माघ शुक्ल अष्टमी को यदि मेघ गर्जन करे तो समझ लेना चाहिए कि निरन्तर एक माह पानी गिरेगा।

49. मरौं माघ का मारा, देंय आसाढ़ै दोष।।
बैल का कथन है कि आप मुझे माघ के महीने में पेट पर भूसा–चारा नहीं खिलाया गया पर आज जब असाढ़ में हल नहीं खींच पाता तो मुझे दोषी ठहराया जा रहा है।

50. फागुन मास वहै पुरबाई। तब गोहूं मा गेरूआ धाई।
यदि फागुन के महीने में पुरवाई हवा चले तो समझ लेना चाहिए कि निरन्तर एक माह पानी गिरेगा।

51. लपका गरजी फागुन आवै। लाटा डोभरी को तरसाबै।
यदि फागुन के महीने में आकाश मण्डल में मेघ गर्जन करें और बिजली चमके तो महुए के फूल मारे जाते हैं। फलस्वरूप महुए से बनने वाले व्यंजन भाटा डोभरी आदि खाने को नहीं मिलते।

– राज्य जैव विविधता बोर्ड, मध्यप्रदेश,
भोपाल के प्रकाशन ''सयानन की थाती'' से साभार

कहावतें
नक्षत्रों का प्रभाव

1. **आर्द्रा वरस पुनर्वस तपै।**
सूखै धान खाय नहि सकै।।
यदि आर्द्रा नक्षत्र में पानी बरसने के पश्चात् पुनर्वस नक्षत्र में धूप निकलने लगे तो धान सूख जाती है और चावल खाने को नहीं मिलता।

2. **आर्द्रा पेड़ पुनर्वस पाती**
होय सुरेखा दिया न बाती।।
यदि आर्द्रा नक्षत्र में बोया जाय तो धान का पौधा मोटा होता है परन्तु पुनर्वस नक्षत्र में बोने से सिर्फ पत्तियाँ हरी किन्तु कोई अश्वलेखा नक्षत्र में बोते हैं उनकी धान तो इतनी भी नहीं पकती कि उसे बेचकर दीपावली को दीपक जला सके।

3. **आवत नहि अद्रा दिहिस जात न दीन्हिंस हस्त।**
तब दोनों पछतात हैं पहुंना अउसग्रहस्त।।
लगते ही आर्द्रा नक्षत्र और समाप्ति के समय हस्त नक्षत्र में वर्षा नहीं हुई तो मेहमान और गृहस्थ दोनों को पछतावा रहता है। क्योंकि फसल नहीं होती।

4. **आदि न बरखै अद्रा हस्त न बरख निदान।**
कहैं घघ सुन घाघनी होंय किसान पिसान।।
यदि लगते ही आर्द्रा और उतरते समय हस्त नक्षत्र में पानी नहीं बरसाया तो किसान लगान और ग्रहस्ती के बोझ में आटे की तरह पिसता रहता है।

5. **चित्रा गोहूं अर्द्रा धान।**
वमा न गेरूआ वमा न धान।।
जो किसान चित्रा नक्षत्र में गेहूँ और आर्द्रा में धान बोते हैं उनकी फसल अच्छी होती है क्योंकि गेहुं में न तो गेरूआ लगता है और न ही धान में गंधी कीड़ा।

6. **तपै–नौतपा–नौ दिन जोय।**
तौ पुन बरखा पूरन होय।।
यदि मृगसिरा नक्षत्र के अन्तिम नौ दिनों में तेज धूप रहती है, बादल बूंदों का मौसम नहीं रहता हो उस वर्ष वर्षा ऋतु में अच्छी वर्षा होती है।

7. **पुखा पुनर्बस कोदों धान।**
मघा सुरेखा खेती आन।।
धान, कोदों की बुबाई के लिए पुष्य और पुर्नवस नक्षत्र उपयुक्त है फिर मघा और अश्वलेखा तो तिल उड़द आदि बोने वाले नक्षत्र हैं।

8. **पुखा पुनर्वस भरे न ताल।**
तौ पुन भरिहैं अगले साल।।
यदि पुष्य और पुनर्वस नक्षत्र में तालाब नहीं भरे तो समझ लेना चाहिए कि वे अब अगले वर्ष ही भरेंगे क्योंकि यही दोनों नक्षत्र ऐसे हैं जिसमें खूब वर्षा होती है।

9. **पुखा पानी का दुखा।**
अक्सर पुष्य नक्षत्र में पानी की कमी रहती है।

10. **सुरेखा न बोइये**
कूट पीस खाइये।
अश्वलेखा नक्षत्र में बोने के बजाय धान को कूट पीसकर रख लेना अच्छा है क्योंकि धान पकने की सम्भावना कम रहती है।

11. **मघा, धरती अघा।**
मघा नक्षत्र के बरसने से धरती तृप्त हो जाती है।

12. **जो कहुं मघा बरख गा जल।**
सब अनाज का होइ भल।
यदि मघा नक्षत्र में पर्याप्त वर्षा हो जाती है तो उससे सभी प्रकार के अनाजों को लाभ पहुंचता है।

13. **पुरबा रौपे धान किसान।**
आधा पइरा आधी धान।
जो किसान पूर्वा नक्षत्र में धान का रोपा लगाते हैं उसमें धान और पुवाल दोनों अच्छे होते हैं।

14. **पुरबा जो पुरवाई पाबै।**
सूखी नदिया नाव चलाबै।।
यदि पूर्वा नक्षत्र में पुरवैया हवा चलने लगे तो इतनी वर्षा होती है कि सूखी पड़ी हुई नदियों में भी नाव चलने लगती है।

15. **पानी बरखै उत्तरा।**
मांड़ पियं न कुत्तरा।।
यदि उत्तरा नक्षत्र में वर्षा हो तो धान की इतनी अच्छी पैदावार होती है कि कुत्ते तक चावल का मांड़ नहीं पीते।

16. **जो अद्रो मा बोबे साठी।**
दुक्खै मार निकारै लाठी।।
यदि आर्द्रा नक्षत्र में धान की बुबाई हो जाय तो इतनी अच्छी पैदावार होती है कि सारे दुःख तकलीफ दूर हो जाते हैं।

17. **चटका मघा न पटका ऊसर।**
दूध भात मा परगा मूसर।।
अगर मघा नक्षत्र में सूखा पड़ गया तो सारी धरती बंजर सी हो जाती है। फलस्वरूप न तो धान की फसल होती है और जानवरों के चारे की कमी के कारण दूध भी नहीं होता।

18. **हथिया बरखै चित में उराय।**
घर बइठे किसान रेरिआय।।
यदि हस्त नक्षत्र में पानी की झड़ी लग जाये तो किसान का मन स्थिर नहीं रहता क्योंकि खेत में उड़द और तिल की फसल नष्ट हो जाती है।

19. **जो बरखा चित्रा मा होय।**
सगली खेती जावै सोय।।
यदि चित्रा नक्षत्र में वर्षा हो रही होती है तो सारी फसल जमीन में गिरकर नष्ट हो जाती है।

20. **चित्रा बरखे तीन गे गोदों तिली के पास।**
चित्रा बरखे तीन भें गेहूं शक्कर मास।।
चित्रा नक्षत्र के बरसने से जहां तीन अनाज कोदो तिल और कपास नष्ट हो जाते हैं वहीं गेहूं गन्ना और मसूर की फसल अच्छी होने की सम्भावना बढ़ जाती है।

21. **उतरा गये निखत्तरा हाथे गे मुह बोर।**
बढैबपुरी चिंत्तै ज उनलाई लोक बहोर।।
उत्तरा और हस्त नक्षत्र ये दोनों सूखे ही चले गये धन्य हो चित्रा नक्षत्र का जो पानी बरसा कर फसल को जिला दिया और परदेश गये लोग भी लौटकर घर आ गये।

22. **रोहिन बरखे मृगतपे कुछ–कुछ अद्रा जाय।**
अइसा बौले भडडरी स्वान भात न खाय।
यदि रोहणी नक्षत्र में पानी बरस गया हो और मृग सिरा नक्षत्र में तेज धूप खिलकर आर्द्रा में भी गर्मी पड़ी हो तो उस वर्ष इतनी वर्षा होती है कि कुत्ते तक भात नहीं खाते क्योंकि धान के पैदावार बहुत अधिक होती है।

23. **जो कहु बरखै स्वाती।**
चरखा चले न तांती।।
यदि स्वाती नक्षत्र में वर्षा होती है तो कपास की फली नष्ट हो जाती है इसलिए उस वर्ष चरखा और धुनिया की धनुही नहीं चलती।

24. **स्वाती नखत म कठिया बोबै।**
गेरूआ कबहूं पास न आबै।
यदि स्वाती नक्षत्र में कठिया गेहूं बोया गया हो तो गेरूआ लगने की सम्भावना नहीं रहती।

25. **एक पानी जो बरखै स्वाती।**
पहिर किसानिन सोन कै पाती।
अगर स्वाती नक्षत्र में एक बार पानी बरसता है तो खेत में पलेवा हो जाता है जिससे अधिक पैदावार होती है और किसान की पत्नी सोने के गहने बनवाती है।

26. **हस्त न बजरी चित्र न चना।**
स्वाअित न गोहू बिसाख न घना।
हस्त नक्षत्र में बाजरा चित्रा में चना विशाखा नक्षत्र में पानी गिरने से धनिया और स्वाति नक्षत्र में पानी बरसने से गेहूं की फसल नहीं होती।

27. **स्वाती गोहूं चित्रा चना।**
पकी निठोल औ होई घना।।
यदि स्वाती नक्षत्र में गेहूं और चित्रा में चना बोया गया हो तो वह ठोस दाने वाला होता है और शाखाएं भी खूब फूटती है।

28. **चना चित्तरा चौ गुना स्वाती गोहूं होय।**
चित्रा नक्षत्र में बोया गया चना और स्वाती नक्षत्र में बोया गया गेहूँ अन्य नक्षत्र में बोये गये गेहूँ चने से चौगुना पैदावार देता है।

29. **आधे हथया मूर मुराई।**
आधे हथया सरसौं राई।
आधे हस्त नक्षत्र तक मूली की फसल बोनी चाहिए और उसके पश्चात् आधे नक्षत्र में सरसों और राई की फसल लेनी चाहिए।

30. **हाथी बरखे तीन गे उरदा तिली कपास।**
हस्त नक्षत्र में पानी बरसने से उड़द तिल और कपास की फसलें नष्ट हो जाती है।

31. **उख कंदानी काहे।**
स्वाती पानी पाये।
गन्ने की फसल इतनी अच्छी क्यों हुई? क्योंकि स्वाती नक्षत्र में उसकी एक बार सिंचाई की गई है।

32. **रोहणी मृगसिर बोबै मक्का।**
लाभ न पावै एकौ टक्का।।
जो किसान रोहणी और मृगसिरा नक्षत्र में मक्का की बुवाई कर देते हैं तो तेज धूप के कारण फसल नष्ट हो जाती है और उन्हें एक टका भी लाभ नहीं मिलता।

33. **चढ़तै बरखै अद्दरा उतरत बरखै हस्त।**
केतनौ राजा डांड ले तउऔ खुसी ग्रहस्त।।
यदि लगते ही आर्द्रा नक्षत्र में पानी गिर गया हो और उतरते समय हस्त नक्षत्र में वर्षा हो तो राजस्व अधिकारी चाहे जितना कर वसूल करे किसान को परेशानी नहीं होगी क्योंकि फसल अच्छी होती है।

34. **सात दिना जो दक्खिन कहै।**
सात दीप जल कहौ न रहै।।
यदि उत्तर दिशा की ओर बादल घुमड़े और दक्षिण की ओर बिजली चमक कर गर्जना करे तो ग्वालों को चाहिए कि अपने गायों की पशु शाला ऊंचे स्थान में बना लें क्योंकि घनघोर वर्षा के लक्षण हैं।

35. **सात दिन जो दक्खिन कहै।**
सात दीप जल कहौ न रहै।
यदि सावन भादों मास में सात दिन तक दक्षिणी हवा चले तेा बहुत समय तक वर्षा न होने के लक्षण समझना चाहिए और फलस्वरूव सभी जगह का पानी सूख जायेगा।

36. **तेज मंद जो बहै बतास।**
तब जानै बरखा कै आस।
यदि हवा कभी तेज और कभी मंद गति से चले तो समझ लेना चाहिए कि अच्छी वर्षा होगी।

37. **धन वा राजा धन वा देश।**
पानी बरखै अगहन शेष।।
वह शासक और वह क्षेत्र धन्य है जहां आधे अगहन के पश्चात् ठंड की वर्षा हो रही हो, क्योंकि इससे अच्छी उपज होगी।

38. **चमकै दक्खिन उतार छोर।**
तब जानै पानी का जोर।।
यदि दक्षिण और उत्तर दिशा की ओर बादल चमक रहे हों तो तेज वर्षा के आसार समझना चाहिए।

39. **जब हथया पूंछ डोलाबै।**
तब घर–घर गोहूं आबै।।
जब हस्त नक्षत्र में हवा के साथ वर्षा होती है तो उस वर्ष गेहूँ की अच्छी पैदावार होती है।

40. **पूरब बादल पच्छिम जाय।**
रोटी पकाय के मोटी खाय।
पूर्व की ओर से घुमड़ कर यदि बादल पश्चिम की ओर से आयें तो पतली रोटी के बजाय मोटी रोटियां खाने लगना चाहिए, क्योंकि अनाज की अच्छी पैदावार होगी।

41. **पच्छिम केर बादर।**
लवरा केर आदर।
पश्चिम की ओर से बादल से पानी की आशा रखना झूठे व्यक्ति से कुछ पाने की लालसा रखने जैसा है। उस बादल से पर्याप्त वर्षा नहीं होगी।

42. **चलै बयार जो कोन इसान।**
उंचे खेती करैं किसान।।
यदि ईशान कोण की ओर से हवा चल रही हो तो ऊंचे स्थान में खेती करनी चाहिए क्योंकि अधिक वर्षा के कारण गहरी जमीन की खेती सड़ सकती है।

43. **पुन परीबा गरज असाढ़।**
दिबस बहतर बरखा बाड़।।
यदि असाढ़ मास से पूर्णमासी और उसके दूसरे दिन प्रतिपदा को मेघ गर्जना करे तो बहत्तर दिनों तक वर्षा और बाड़ रह सकती है।

44. **वायु चली जो दक्खिना।**
मांड न पइहा चिक्खना।।
यदि दक्षिण दिशा की अवा सावन भादों मास में चल रही हो तो उस वर्ष मांड़ चखने को नहीं मिलेगा, अर्थात् धान की पैदावार नहीं होगी।

45. **रात के उदड़ करै दिन छाया।**
कहे घाघ दिन बरखा आया।
रात्रि में बादल चलता रहे और दिन में सूर्य ढ़का रहे तो घाघजी का कथन है कि वर्षा ऋतु आ गई।

46. **माघ म गरमी जेठ म जाड़ा।**
कहे घाघ हम होव उजाड़ा।।
यदि माघ में गर्मी और जेठ में ठंड़क रहे तो घाघ का कथन है कि इस वर्ष हमारी फसल सूख जायेगी।

47. **माघ मास जो परै न सीत।**
महंगा अन्न मानिए मीत।।
माघ मास में यदि ठंडी न पड़े तो समझ जाना चाहिए कि इस वर्ष अनाज महंगा होगा।

48. **कातिक सुदी एकादसी बादर बिजुली होय।**
तौ आसाढ़ मा भड्डरी बरखा चोखी होय।
यदि कार्तिक शुक्ल पक्ष एकादशी को बादल घुमड़ कर बिजली चमक रही हो तो भड्डरी ज्योतिषी का कथन है कि वर्षा अच्छी होगी।

49. मास असाढ़ी पूनू सांझ, बायु देखिए नभ के पास।
नैरित होय बूंद ना परै, राजा परजा भूखन मरै।।
अगिन कोन जो बहै समीरा, पेड़ अकाल दुख सहै शरीरा।।
उत्तर से जल फूही परै, मूस सांप दूनौं हवतरैं।।
पच्छिम समय नीक तब जानैं, आगे वहै तुषार पुमानै।।
वायु कहाँ जो बहे इसाना, परजै देश नचाबै कोना।।
दक्खिन पच्छिम आधा समय, भड्डर जोशी अइसन मनै।।
जो कहु हवा अकाशे जाय, परै न बूंद काल पर जाय।।

असाढ़ मास की पूर्णमासी को हवा को आकाश में देखिए। यदि वह नेतृत्य कोण से आ रही हो तो धरती में एक बूंद भी पानी नहीं पड़ेगा फलस्वरूप शासक और जनता में त्राही–त्राही हो जायेगी। यदि आग्नेय कोण से भी चलेगी तब भी अकाल का दश झेलना पड़ेगा। पर यदि उत्तर की ओर से हवा चलेगी तो हल्की वर्षा होगी और चूहे तथा सांपों की उत्पत्ति अधिक होगी। यदि पश्चिम दिशा की ओर से बहे तो समय अच्छा होगा और आगे आने वाले समय में पाला पड़ेगा पर अगर हवा ईशान कोण की ओर से चल रही हो तो प्रजा जनों को काम की तलाश में इधर–उधर भटकना पड़ेगा। यदि दक्षिण और पश्चिमी दोनों हवाएं चलती हैं तो भड्डरीजी का कथन है कि न तो अधिक वर्षा होगी न बहुत कम। पर अगर हवा नीचे से आकाश की होर बहे तो अकाल पड़ने के लक्षण समझना चाहिए।

कहावतें
वर्षा से सम्बन्धित

1. **बोलिस लेखरी फूल कांश।**
अब नहि आय बरखा कै आश।
यदि लोमड़ी बोलने लगे और मैदान में उगे कांश के पौधे फूलने लगें तो समझ लेना चाहिए कि अब वर्षा ऋतु समाप्त होने वाली है।

2. **रात दिन घमछांही**
बरखा के दिन नांही।
यदि रात्रि और दिन में बादल कभी दिखें कभी समाप्त हो जायें तो समझ लेना चाहिए कि अब पानी नहीं बरसेगा।

3. **लाल पियर जब होय अकाशा।**
तब नहिं आय बारखा कै आशा।
यदि आकाश लाल और पीले रंग का दिखने लगे तो समझ लेना चाहिए कि अब वर्षा ऋतु समाप्त होने में है।

4. **करिया बादर जिउ डेरबाबै।**
भुरबा बादर पानी लाबै।
काला बादल देखकर भले ऐसा लगे कि भारी वर्षा होगी पर वर्षा काले से नहीं भूरे बादल से होती है।

5. **लाल बरखै ताल भर।**
सेत बरखै खेत भर।
लाल रंग का बादल अधिक से अधिक एक तालाब के पानी के बराबर बरसेगा और सफेद बादल एक खेत के पानी के बराबर इससे अधिक नहीं।

6. **जब उठे धुआ धार।**
तब भरै नदी नार।।
नदी नाले तभी भरते हैं, जब आकाश में धुएं जैसा मटमैला बादल घुमड़ता है।

7. **कलस क पानी गरम मा चिड़ी नहावै धूर।।**
अण्डा लई चिंउटी चली तब बरखै भरपूर।।
यदि घड़े का पानी कुनकुना हो जाय, चिड़िया धुल में लोटकर स्नान करें और चींटियां अण्डा लेकर निचले स्थान से ऊँचे स्थान की ओर भागने लगें तो समझना चाहिए कि अब तेज वर्षा होने वाली है।

8. **ढ़ेला बइठ चील्ह जो बोलै।**
गली–गली मा पानी डोलै।।
यदि ढ़ेला में बैठकर चील पक्षी आवाज करे तो समझाना चाहिए कि तेज वर्षा होने के आसार है।

9. **आमाझोर बहै पुनबाई।**
तब जाना की बरखा आई।।
यदि पुरवाई हवा खूब तेजी से चले तो समझ लेना चाहिए कि वर्षा ऋतु आने वाली है।

10. **दिन के बादर रात के तारे।**
चली कन्त जहां जीबै बारे।।
यदि दिन के समय आकाश में बादल रहें और रात्रि में तारे दिखाई दें तो समझ लेना चाहिए कि वर्षा नहीं होगी इसलिए पत्नी कहती है कि हे पति कहीं विदेश परदेश में निकल कर काम तलाशा जाय जिससे बच्चों को जिलाया जा सके क्योंकि यहां फसल सूख जायगी।

11. **पूरन धनु और पच्छिम भान।**
कहै घाघ बरखा नियरान।।
यदि पूर्व की ओर इन्द्र घनुष उगा हो और पश्चिम की ओर सूर्य हो तो घाघ कथन है कि वर्षा शीघ्र ही होने वाली है।

12. **तीतर बरनी बादरी रही गगन मा छाय।**
कहै घाघ सुन भड्डरी बिन बरखे न जाय।।
यदि तीतर के रंग का बादल आकाश मण्डल को घेर ले तो घाघ कथन है कि भड्डरी वर्षा अवश्य होगी।

13. **बोली गोह फूल गा कांस।**
अब छांड़ा बरखा कै आस।।
यदि गोह बोलना शुरू कर दे और जंगल में कांश फूलने लगे तो समझ लेना चाहिए कि वर्षा ऋतु समाप्ति होने वाली है।

14. **उलटा गिरगिट ऊचें चढ़ै।**
बरखा होय भूम जल बढ़ै।।
यदि गिरगिट पीछे की ओर से ऊंचाई की ओर चढ़ रहा हो तो निश्चय मानिये कि वर्षा होगी और धरती में पानी ही पानी दिखेगा।

15. **बादल होई हैं बरखन हार।**
पलट जई दक्खिनी बयार।।
दक्षिणी हवा चल रही हो तो पानी नहीं बरसता भले ही दिखाई दें। इसलिए अगर उन्हें बरसना होगा तो दक्षिणी हवा अपने आप पलट जायगी।

16. **छिन पुरबइया छिन पछुवाय।**
छिन मा वहै बड़ेरा आय।
जो बादर बिन बादर आबै।
कहै घाघ जल कहां समाबै।।
यदि कभी पुरवइया कभी पछुआ और कभी बबंडर चलने लगे तथा बादल के अन्दर बादल प्रवेश करे तो समझ लेना चाहिए कि घनघोर वर्षा होगी।

17. **पहिल पबन पुरइया आबै।**
कहै घाघ जल कहां समाबै।।
यदि वर्षा ऋतु आते ही पुरवइया हवा चलने लगे तो इतनी वर्षा होगी कि नदी तालाब भर जायेगें।

18. **दिन मा बादर रात तरइंया।**
आसौं ददउ धौ का करइंया।।
यदि दिन में बादन और रात्रि के तारे दिखाई दें तो मौसम का मिजाज ठीक नहीं समझना चाहिए अर्थात् सूखा पड़ने की संभावना हैं।

19. **उगे अगस्त फूल वन कांसा।**
अब नहि आय बरखा कै आसा।।
यदि अगस्त तारा उगने लगा हो और जंगल में कांस फूल गया हो तो समझ लेना चाहिए कि वर्षा की सम्भावना नहीं है।

20. **संझा धनुष बिहन्ने पानी।**
यदि सूर्य अस्त के समय इन्द्र धनुष उगा दिखाई दे तो अगले दिन सुबह अवश्य वर्षा होगी।

21. **कउआ बोले रात मा दिन मा बोल सियार।**
अइसन भाखैं भड्डरी निहचौं परै अकाल।।
यदि दिन में गीदड़ और रात्रि में कौआ कांव–कांव करे तो भड्डरी का कथन है कि निश्चय अकाल पड़ेगा।

22. **उत्तर चमके बीजुरी पुरूब बहै जो बायु।**
कहैं घाघ सुन घाघनी बरदा भीतर लायु।।
यदि उत्तर की ओर बिजली चमके और हवा पुरवइया चले तो घाघ का कथन है कि घाघनी तुम अपने बैल बाहर से अन्दर बांध दो क्योंकि निश्चित ही वर्षा होगी।

23. **दक्खिन बरखै सद्दौं काल।**
एकन बरखै बरखा काल।।
दक्षिण हवा बाकी सभी ऋतुओं में पानी बरसाती हैं पर बरसा ऋतु में दक्षिणी हवा चलने से वर्षा नहीं हो सकती।

24. **दिन मा गरमी रात म ओस।**
कहै घाघ बरखा सौ कोस।।
घाघ का कथन है यदि दिन में गर्मी और रात्रि में ओस पड़े तो समझ लेना चाहिए कि वर्षा अभी सौ कोस दूर है।

25. **चमकै पच्छिम उत्तर ओर।**
तब जानै पानी का जोर।।
यदि उत्तर और पश्चिम दिशा की ओर बादल चमके तो तेज पानी गिरने की संभावना रहती है।

कहावतें
खेती किसानी

1. **तीन सिंचाई तेरा गोड़।**
तब देखा उखी कै पोर।।
गन्ने की गर्मी में यदि तीन बार सिंचाई तथा तेरह बार गुड़ाई की जाय तो पोर बड़ें तथा उपज अधिक होती है।

2. **बाड़ी मा बाड़ी करै, करै ईख मा ईख।**
ई तीनौ बरबांध जे चलैं आनके सीख।।
जो कपास के खेत में पुनः कपास और गन्ने के खेत में गन्न लगाता है और जो अपने विवेक से सोचने के बजाय दूसरे के इशारे पर चलता है इन तीनों को बर्बाद समझना चाहिए। (एक फसल के बाद फिर से वहीं फसल लेने के उस फसल को जमींन से मिलने वाले पोषक तत्व कम हो जाते हैं इसीलिए फसलों को बदल बदल कर बोने से लाभ होता है। अलग अलग फसलों को अलग अलग पोषक तत्वों की जरूरत होती है साथ ही पौधे जमीन को कुछ तत्व देते रहते हैं तो दूसरी फसल को उपयोगी होते है। फसल बदल बदल कर बोने से एक ही तरह के पोषक तत्वों की अधिक कमी नहीं हो पाती और जमीन को तरह तरह के तत्व भी मिलते रहते है।)

3. **पितर पाख जे बोई अरसी।**
ओखे घर मा रूपिया बरसी।।
जो किसान पितर पक्ष यानी कि क्वांर माह के प्रथम पखवाड़े में अलसी की बुबाई करता है उसके घर में खूब रूपये आते है क्योंकि अलसी की फसल अच्छी होती है।

4. **कठिया गोहूं करगी धान।**
जो बोबै व चतुर किसान।।
कठियां गेहूं और करगी धान बोने वाला किसान चतुर माना जाता है क्योंकि कठिया गेहूं सूखी कम नमी वाली धरती में भी जम जाता है और करगी धान में सूखा सहन करने की क्षमता होती है।

5. **पहिये खेत न डारे गोबर।**
अब सेतै और मउते थोमर।।
पहले खेत में तुमने गोबर की खाद नहीं दी अब पश्चाताप से क्या लाभ जब फसल कमजोर हुई।

6. **पछुआ हवा औसाबै जोई।**
घाघ कहै घुन कबौ न होई।।
जो किसान पछुआ हवा चलने पर भूसे से दाने को उड़ाकर अलग करते हैं उनके दाने में घुन नामक कीड़ा नहीं लगता।

7. **गाजरसकला मूरी।**
तीनौ बोबै दूरी।।
गाजर, शकरकंद और मूली इन तीनों को दूर–दूर बोया जाय तब अधिक लाभ मिलता है।

8. **मसुरी बोबै डिल हर खेत।**
तब मुंह मांगा पड़सा देत।।
मसूर को ढेला वाले सूखे खेत में बोना चाहिए तब उसमें अच्छी पैदावार होती है और मुहं मांगा दाम मिलता है।

9. **जेखे खेत परा नहि गोबर।**
वा किसान का मानै दूवर।।
जिस किसान के खेत में गोबर की खाद नहीं पड़ी उसे कमजोर किसान समझना चाहिए।

10. **बरखा पानी बहैं न पाबै।**
तब खेती का मजा जखाबै।।
जब बरखा का पानी खेत में संचित रहेगा तभी खेती की उपज अच्छी होगी।

11. **हरिन फलांगन काकरी पैगे पैग कपास।**
जाय के कहा किसान से बोबै धनी उखास।।
ककड़ी खीरा उतनी दूर पर बोना चाहिए जितनी हिरण की एक छलांग होती है। और कपास आदमी के पग के बराबर दूर में, पर किसान को समझा दो कि वह गन्ने की फसल पास–पास लगाये।

12. **जेतनै गहिरे जोतै खेत।**
बीज परे वतनै सुख देत।।
खेत की जितनी गहरी जुताई की जाय बीज की बुबाई के पश्चात् वह उतना ही फसल के लिए लाभ दायक होता है।

13. **मेंड बांध जोतैं मन देय।**
दसमन बीघा हमसे लेय।।
जो किसान खेत में मेंड बनाकर जुताई करता है और मन लगाकर खेती करता है तो उस किसान को में 10 मन प्रति बीघा देने को तैयार हूं अर्थात्, कम से कम 10 मल अनाज अवश्य होगा।

14. **तरे ओद ऊपर बदराई।**
तब गोहूं मां गेरूआ धाई।।
जब नीचे जमीन गीली हो और उपर बादल हो तब गेहूं की फसल में गेरूआ रोग लगता है।

15. **गोहूं जौ जब पछुआ पाबै।**
गाह किसान ओही ओसवावै।।
बैसाख में जब पछुआ हवा चले तभी किसान को गेहूं की गहाई कर भूसे से दाने को अलग करना चाहिए क्योंकि उससे दाने में घुन नामक कीड़ा नहीं लगता।

16. **कच्चा खेत न जोते कोई।**
नहि अंकुरौ भर खेत न होई।।
जब तक खेत जोतने लायक न हो जाय तब तक गीले खेत को नहीं जोतना चाहिए नहीं तो उसमें बीज में अंकुरण नहीं होता।

17. **जो कपास का खेत न गोड़ी।**
ओखे हांथ न आवै कौड़ी।।
जो किसान कपास की फसल बोकर फसल की निराई गुड़ाई नहीं करेगा उसे एक कौड़ी भी लाभ नहीं मिलेगा।

18. **जोतिस खेत घांस नाटूट।**
ओकर भाग सांझ के फूट।।
यदि किसान ने हल चलाया पर खेत की घास नहीं उखड़ी तो उस किसान की किस्मत तो उसी शाम को फूट गई क्योंकि रात्रि में घास पुनः अंकुरित हो जायेगी और उस खेत में बोई गई फसल अच्छी नहीं होगी।

19. **अकमन कोदो नीम जबा।**
बेर के फूले होय चना।।
अगर मदार खूब फूला हो तो उस वर्ष कोदों की फसल अच्छी होती है इसी प्रकार जिस वर्ष नीम खूब फूलती है उस वर्ष जौ और जिस वर्ष बेर फूलती है उस वर्ष चना अच्छा होता है।

20. **तब गोहूं करै बोवाई।**
जब बर्र बरोठे आई।।
गेहूं की बोनी तब करती चाहिए जब ढंड के कारण बर्र अपने छत्ते को छोडकर घर के अंदर आने लगे।

21. **मेंदनि मेंढ़क भड़स किसान। मोर पपीहा घोड़ा धान।।**
बाढ़ी मच्छ लता लपटानी। दसौं खुसी जब बरखै पानी।।
जब अच्छी वर्षा होती है धरती, मेंढक, भैंस, किसान तथा मोर, पपीहा, घोड़ा, धान, मछली और लता ये दसों बहुत प्रसन्न होते हैं।

22. **कोदौ कहै भले में छोंट।**
छोट बड़े का भरतेंव पेट।।
कोदों का कथन है कि में भले ही देखने में छोटा दिखता हूं पर अकाल के समय छोटे बड़े सभी लोगों के भोजन के काम आता हूं क्योंकि मुझे अस्सी वर्ष तक रखा जा सकता है।

23. **ऊख सरउती डिहुआ धान।**
इनहीं छाड़ न बौबै आन।।
किसान को चाहिए कि वह सरौती किस्म की देशी गन्ने कि किस्म और डिहुला नामक जल्दी पकने वाली धान के अलावा और कोई किस्म न बोये क्योंकि इनमे सूखा सहने की क्षमता होती है।

24. **बौबै अरसी कब?**
माटी सरसी तब।।
अलसी खेत में तभी बोनी चाहिए जब उसमें पर्याप्त नमी हों।

25. **धन तिल धन तिल बिउर कपास।**
चाइ चुइया कोदो धान।।
तिल को घना कपास को दूर दूर और कोदों धान को बार बार लौट कर खूब घना बोना चाहिए।

26. **सामां कुटकी लोक जियामें।**
तीन पाख मा पक के आमें।।
सांवा कुटकी सब को जीवित रखने वाले अन्न हैं क्योंकि ये तीन पखवाड़े में ही पक कर आ जाते हैं।

27. **बोबत बनै त बोबै।**
नहीं बरा बनाय के खाबै।।
उड़द की फसल खेत में तभी बोनी चाहिए जब बुवाई करनी आती हो क्योंकि घनी बुवाई से फसल बिल्कुल नहीं होती इससे तो अच्छा है कि बड़े बना कर खा लिया जाय।

28. **चना सींच मा जबहिन आबै।**
ओके पहिले तुरत खोंटाबै।।
चना जैसे ही सिंचाई करने लायक हो उस के पहले उस के तने की खोटाई करा देनी चाहिए।

29. **जब शैल खटा खटा बाजै।**
तब चना खूब मन गाजै।।
जब खेत जोतते समय रूखा हो जाय और जुए के शैलों से जुताई करते समय खट खट की आवाज निकले तब समझना चाहिए कि चने की पैदावार अच्छी होगी।

30. **गोहूं जबा क पांच पसेर।**
मटर क बीघा तीसक सेर।।
गेहूं और जौ एक बीघा में पांच पसेरी और मटर की तीस सेर बोना चाहिए।

31. **बौबै चना पसेरी तीन।**
जोन्हरी तीन सेर कईदीन।।
चने को बीघा पीछे 15 सेर और ज्वार को तीन सेर बोना चाहिए।

32. **दुइ अरहर और मोथी मास।**
ड़ढेसेर बोबे बीज कपास।।
अरहर, उड़द, मूंग तथा मसूर तीन सेर तथा कपास प्रति बीघा डेढ़ सेर बोना चाहिए।

33. **पांच पसेरी बिगहा धान।**
चार पसेरी जड़हन जान।।
साधारण धान हो तो उसे एक बीघा में पांच पसेरी और अगर देर से पकने वाली जड़हन धान हो तो चार पसेरी प्रति बीघा बोना चाहिए।

34. **सवा सेर बीघा सांमा जान।**
तिल सरसौ अजुरी भरमान।।
सांवा एक बीघा में सवा सेर और तिल सरसों एक अंजुली बोना चाहिए।

35. **घनी अमारी सनई बोय।**
तब सुतरी कै आसा होय।।
अमारी और सन के बीच को खूब घना बोना चाहिए तभी अच्छी सुतली मिलने की सम्भावना होती है।

36. **पोर काट के तुरत दबावै।**
तबहिन ऊख बहुत सुख पाबै।।
गन्ने की गांठ को काट कर तुरंत गीली मिट्टी मे दबा देना चाहिए तभी उसमें अच्छा अंकुरण होता है।

37. **पहिले ककरी पाछु धान।**
जे उस बौबे व चतुर किसान।
पानी गिरने पर सबसे पहली खीरा ककरी का बीज बोना चाहिए और उसके बाद धान जो कोई इस क्रम में बोता है वही चतुर किसान है।

38. **गाजर गंत्री मूरी।**
तीनौ बौबे दूरी।।
गाजर मूली और शकरकन्द को फासले से बोना चाहिए नहीं तो पैदावार नहीं होती।

39. **सांमा अन्न कहाबै बड़का।**
सामन पाक जियाबै लड़का।।
समां सभी अनाजों से बड़ा माना जाता है क्योंकि वह सावन में ही पककर किसान के परिवार के खाने के लिए हो जाता है।

40. **बारा बाह बगोरे गोहूं।**
यदि आसाढ़ से कार्तिक के बीच 12 बार आड़ी और खड़ी जुताई की जाय तो खरान और पड़त जमीन में भी अच्छी गेहूं की पैदावार होती है, क्योंकि खेत में पयार्य नमी संचित हो जाती है।

41. **गहिर न जोतैं बोवे धान।**
तउनै कुठुला भरी किसान।।
जो किसान खेत में धान बोना चाहे उसे गहरी जुताई नहीं करनी चाहिए तभी धान की पैदावार होगी क्योंकि गहरी जुताई से धान की पैदावार ठीक से नहीं होती।

42. **गोहूं बाहे चना खोटायें।**
गेहूं की पैदावार जहां कई बार की जुताई के बाद बोने से अच्छी होती है वहीं चना की जमने से एक माह के अन्दर खोटाई कराई जाय तब अच्छी उपज मिलती है।

43. **धान पाक केरा।**
तीनौ पानी बोरा।।
धान, पान और केला इन तीनों को खूब सिंचाई की जरूरत पड़ती है इसलिये इन्हें पानी में पौधा माना जाता है।

44. **साठी होबै साठ दिन।**
जब पानी पाबै रात दिन।।
जल्दी पकने वाली धान साठ दिन में पक जायेगी पर उसे रात और दिन के बीच एक बार पानी अवश्य चाहिये।

45. **तीन पाख दुइपानी।**
पकि आई कुटुक रानी।।
यदि ड़ेढ माह के बीच में दो बार भी पानी गिर जाय तब भी कुटकी का पौधा तैयार हो जाता है और उसके दाने पक जाते है।

46. **पग पग माही बाजरा दादुर कुदनी ज्वार।**
बाजरा का बीज आदमी के एक पग के बराबर दूरी में और ज्वार इतनी दूर पर बोना चाहिये जितना मेंढ़क एक बार में छलांग लगा लेता है।

47. **धान गिरै बड़ भागी का।**
गोहूं गिरै अभगी का।।
धान की फसल तब गिरती है जब उसके पौधे की बड़ी–बड़ी बाली में दाने आ जाते है। इसलिए फसल का कोई नुकसान नहीं होता। पर गेंहूं का पौधा बालें आने के पहले ही बढ़ कर गिर जाता है इसलिए धान गिरने वाला किसान किस्मत वाला और गेहूं गिरने वाला किसान बदकिस्मत माना जाता है।

48. **जो मोहि देई टोर मरोर।**
तब में होइ हौं कुठला फोर।।
कोदों का कथन है कि किसान निदाई के समय मेरे पौधे को जब तोड़ मरोड़ और पैरों से कुचल देगा तभी मेरी अच्छी पैदावार होगी।

49. **आये फूल न बरखा पानी।**
धान मरा अधबीच जवानी।।
यदि धान में फूल आते समय पानी नहीं बरसता तो धान की फसल आधी जवानी में ही नष्ट हो जाती है।

50. **गोहूं गेरूआ गंधी धान।**
दोऊ कड़न से मरा किसान।।
यदि गेहूँ में गेरूआ रोग और धान मे गंधी मक्खी लग जाती है तो किसान के ऊपर दोहरी मार पड़ जाती है। गेरूआ से जाहं गेहूं का दाना पतला पड़ जाता है वहीं गंधी कीड़ा दूध की अवस्था में दाने को खा जाता है।

51. **पांचै आम पचीसै महुआ।**
असी बरिस मा अमली कटहुआ।।
आम पांच वर्ष में और महुआ 25 वर्ष में फल देने लगता है पर इमली का पेड़ लगाने के अस्सी वर्ष में खाने के काम आता है।

52. **जाय पेड़ जब बकुला बइठै।**
यदि किसी पेड़ में बगुलों का झुन्ड बैठना शुरू कर दे तो उसके बीट करने से पेड़ शीघ्र ही सूख जाता है।

53. **जाय खेत जब जामी गोभी।**
यदि खेत में गोभी नामक खरपतवार जमने लगे तो खेत नष्ट समझना चाहिए क्योंकि उससे फसल नहीं होती।

54. **फूटे से बने जाते हैं फूट कपास अनार।**
फूट ककड़ी, कपास और अनार इनकी सार्थकता फूटने के पश्चात् ही होती है।

नोट्स

प्रकाशक

cecoedecon

National Conference on
Global Warming and Climate Change

एप्को
पर्यावरण नियोजन एवं समन्वय संगठन